कथा-षोडशी

[हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियों का संग्रह]

४।५

सम्पादक

जी० सच्चिदानंदन् एम. ए., बी. एस-सी.,

अध्यापक, हिन्दी स्नातकोत्तर शिक्षण तथा अनुसंधान विभाग

मैसूर विश्वविद्यालय

तथा

एम० राजेश्वरय्या, एम. ए., बी. एड., एल-एल. बी.,

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, महाराजा कालेज,

मैसूर विश्वविद्यालय

— وڈیپے آزاد —

जनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-6

संघ का नियम था। आर्य्यमित्र ने हँसते हुए अभिवादनकर उत्तर दिया और पूछा—"सुजाता, आज तुम स्वस्थ हो ?"

सुजाता उत्तर देना चाहती थी। पर···आर्य्यमित्र के काषाय के नवीन रंग में उसका मन उलझ रहा था। वह चाहती थी कि आर्य्यमित्र चला जाय; चला जाय उसकी चेतना के घेरे के बाहर। इधर वह अस्वस्थ थी, आर्य्यमित्र उसे औषधि देता था। संघ का वह वैद्य था। अब वह अच्छी हो गई है। उसे आर्य्यमित्र की आवश्यकता है नहीं; किन्तु···है तो·· हृदय को उपचार की अत्यन्त आवश्यकता है। तब भी आर्य्यमित्र ! वह क्या करे। बोलना ही पड़ा।

"हाँ अब तो स्वस्थ हूँ।"

"अभी पथ्य सेवन करना होगा।"

"अच्छा।"

"मुझे और भी बात कहनी है।"

"क्या ? नहीं, क्षमा कीजिए। आपने कब से प्रव्रज्या ली है ?"

"वह सुनकर तुम क्या करोगी। संसार ही दुःखमय है।"

"ठीक तो······अच्छा नमस्कार।"

आर्य्यमित्र चला गया। किन्तु उसके जाने से जो आन्दोलन आलोक-तरंग में उठा, उसी में सुजाता झूमने लगी थी। उसे मालूम नहीं कब से महास्थविर उसके समीप खड़े थे।

* *

समुद्र का कोलाहल कुछ सुनने नहीं देता था। सन्ध्या धीरे-धीरे विस्तृत नील जलराशि पर उतर रही थी। तरंगों पर तरंगे बिखरकर चूर हो रही थी। सुजाता बालुका की शीतल वेदी पर बैठी हुई अपलक आँखों से उस क्षणिकता का अनुभव कर रही थी; किन्तु नीलाम्बुधि का महान् सम्भार किसी वास्तविकता की ओर संकेत कर रहा था। सत्ता की सम्पूर्णता धुँधली सन्ध्या में मूर्तिमान हो रही थी। सुजाता बोल उठी—

"जीवन सत्य है, संवेदन सत्य है, आत्मा के आलोक में अन्धकार [illegible]

नहीं है।"

"सुजाता, यह क्या कह रही हो ?"—पीछे से आर्य्यमित्र ने कहा।

"कौन आर्य्यमित्र ! मैं भिक्षुणी क्यों हुई आर्यमित्र !"

"व्यर्थ सुजाता ! मैने अमावस्या की गम्भीर रजनी में सब के सम्मुख पापी होना स्वीकार कर लिया है। अपने कृत्रिम शील के आवरण में सुरक्षित नही रह सका। मैंने महास्थविर से कह दिया कि संघमित्र का पुत्र आर्य्यमित्र सांसारिक विभूतियों की उपेक्षा नही कर सकता। कई पुरुषों की सचित महौषधियाँ, कलिंग के राजवैद्य पद का सम्मान, सहज में छोडा नहीं जा सकता। मैं केवल सुजाता के लिए ही भिक्षु बना था। उसीका पता लगाने के लिए मै नील विहार में आया था। वह मेरी वाग्दत्ता भावी पत्नी है।"

"किन्तु आर्य्यमित्र, तुमने विलम्ब किया, मैं तुम्हारी पत्नी न हो सकूगी।"—सुजाता ने बीच ही मे रोककर कहा।

"क्यो सुजाता ! यह काषाय क्या शृंखला है ? फेंक दो इसे। वाराणसी के स्वर्ण-खचित वसन ही तुम्हारे परिधान के लिए उपयुक्त है। रत्नमाला, मणि-ककन और हेम-कांची तुम्हारी कमल-कोमल अंग-लता को सजावेंगी। तुम राजरानी बनोगी।"

"किन्तु······"

"किन्तु क्या सुजाता ? मेरा हृदय फटा जाता है। बोलो, मैं संघ का बन्धन तोड चुका हूँ और तुम भी तो जीवन की, आत्मा की क्षणिकता मे विश्वास नही करती हो ?"

"किन्तु आर्य्यमित्र ! मै वह अमूल्य उपहार—जो स्त्रियाँ, कुलवधुएँ अपने पति के चरणो मे समर्पण करती है—कहाँ से लाऊँगी ? वह वरमाला जिसमें दूर्वा-सदृश कौमार्य्य हरा-भरा रहता हो, जिसमे मधूक-कुसुम-सा हृदयरस भरा हो, कैसे कहां से तुम्हे पहना सकूंगी ?"

"क्यों सुजाता ? उसमे कौन-सी बाधा है !"—कहते-कहते आर्य्यमित्र का स्वर कुछ तीक्ष्ण हो गया। वह अँगूठे से बालू बिखेरने लगा।

"इसे सुनकर तुम क्या करोगे ? जाओ, राज-सुख भोगो। मुझ जन्म

की दुखिया के पीछे अपना आनन्द-पूर्ण भविष्य-ससार नष्ट न करो आर्य्य-मित्र ! जब तुमने सघ का बन्धन भी तोड़ दिया है, तब मुझ पामरी के मोह का बन्धन भी तोड़ डालो ।"

सुजाता के वक्ष मे श्वास भर रहा था ।

आर्य्यमित्र ने निर्जन समुद्र-तट के उस मलिन सायकाल मे सुजाता का हाथ पकड़कर तीव्र स्वर मे पूछा—"सुजाता, स्पष्ट कहो ; क्या तुम मुझसे प्रेम नहीं करती हो ?"

"करती हूँ आर्य्यमित्र, इसी का दु.ख है । नही तो भैरवी के लिए किस उपभोग की कमी है ?"

आर्य्यमित्र ने चौंककर सुजाता का हाथ छोडते हुए कहा—"क्या कहा—भैरवी !"

"हाँ आर्य्यमित्र ! मैं भैरवी हूँ, मेरी···"

आगे वह कुछ कह न सकी । आँखों से जल-बिन्दु ढुलक रहे थे, जिनमें वेदना के समुद्र ऊर्मिल हो रहे थे ।

आर्य्यमित्र अधीर होकर सोचने लगा—पारिवारिक पवित्र बन्धनों को तोडकर जिस मुक्ति की—निर्वाण की—आशा मे जनता दौड रही है, क्या उस धर्म की यही सीमा है ! यह अन्धेर—गृहस्थो का सुख न देख सकने वालों का यह निर्मम दण्ड समाज कब तक भोगेगा ?

सहसा प्रकृतिस्थ होकर उसने कहा—"सुजाता ! मेरा सिर घूम रहा है, जैसे देवरथ का चक्र; परन्तु मैं तुमको अब भी पत्नी-रूप से ग्रहण करूँगा । सुजाता चलो ।"

"किन्तु मैं तो तुम्हे पति-रूप मे ग्रहण न कर सकूँगी । अपनी सारी लाञ्छना तुम्हारे साथ बाँटकर जीवन-संगिनी बनने का दुस्साहस मैं न कर सकूँगी । आर्य्यमित्र, मुझे क्षमा करो ! मेरी वेदना रजनी से भी काली और दुःख समुद्र से विस्तृत है । स्मरण है ? इसी महोदधि के तट पर बैठकर, सिकता में हम लोग अपना नाम साथ-ही-साथ लिखते थे । चिर-रोदनकारी निष्ठुर समुद्र अपनी लहरों की उँगली से उसे मिटा देता था । मिट जाने

हृदय की सिकता से प्रेम का नाम ! आर्य्यमित्र, इस रजनी के अन्धकार में उसे विलीन हो जाने दो ।"

"सुजाता !"—सहसा एक कठोर स्वर सुनाई पड़ा ।

दोनो ने घूमकर देखा, अन्धकार-सी भीषण मूर्ति, संघ-स्थविर !

* *

उसके जीवन के परमाणु बिखर रहे थे। निशा की कालिमा मे, सुजाता सिर भुकाये हुए बैठी, देव-प्रतिमा की रथ-यात्रा का समारोह देख रही थी; किन्तु दौडकर छिप जाने वाले मूक दृश्य के समान वह किसीको समझ न पाती थी । स्थविर ने उसके सामने आकर कहा—"सुजाता, तुमने प्राय-श्चित्त किया ?"

"किसके पाप का प्रायश्चित्त ! तुम्हारे या अपने ?"—तीव्र स्वर मे सुजाता ने कहा ।

"अपने और आर्य्यमित्र के पापों का—सुजाता ! तुमने अविश्वासी हृदय से धर्म-द्रोह किया है ।"

"धर्मद्रोह ! आश्चर्य !!"

"तुम्हारा शरीर देवता को समर्पित था सुजाता ! तुमने···"

बीच ही में उसे रोककर तीव्र स्वर में सुजाता ने कहा—"चुप रहो असत्यवादी ! वज्रयानी नर-पिशाच !··············"

एक क्षण मे उस भीषण मनुष्य की कृत्रिम शान्ति विलीन हो गयी । उसने दाँत किट-किटाकर कहा—"मृत्यु-दण्ड !"

सुजाता ने उसकी ओर देखते हुए कहा—"कठोर से भी कठोर मृत्यु-दण्ड मेरे लिए कोमल है । मेरे लिए इस स्नेहमयी धरणी पर बचा ही क्या है ? स्थविर ! तुम्हारा धर्मशासन घरो को चूर-चूर करके विहारो की सृष्टि करता है—कुचक्र मे जीवन को फँसाता है । पवित्र गार्हस्थ्य बन्धनों को तोड़कर तुम लोग भी अपनी वासना-तृप्ति के अनुकूल ही तो एक नया घर बनाते हो, जिसका नाम बदल देते हो । तुम्हारी तृष्णा तो साधारण सरल गृहस्थों से भी तीव्र है, क्षुद्र है और निम्न-कोटि की है !"

"किन्तु सुजाता, तुमको मरना होगा।"

"तो मरूँगी स्थविर, किन्तु तुम्हारा यह काल्पनिक आडम्बरपूर्ण धर्म भी मरेगा। मनुष्यता का नाश करके कोई भी धर्म खड़ा नहीं रह सकता!"

"कल ही!"

"हाँ, कल प्रभात में तुम देखोगे कि सुजाता कैसे मरती है!"

सुजाता मन्दिर के विशाल स्तम्भ से टिकी हुई, रात्रिव्यापी उत्सव को स्थिर दृष्टि से देखती रही। एक बार उसने धीरे से पूछा—

'देवता, यह उत्सव क्यों? क्या जीवन की यन्त्रणाओं से तुम्हारी पूजा का उपकरण संग्रह किया जा सकता है?'

प्रतिमा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

प्रभात की किरणें मन्दिर के शिखर पर हँसने लगीं।

देव-विग्रह ने रथ-यात्रा के लिए प्रयाण किया। जनता तुमुल नाद से जय-घोष करने लगी।

सुजाता ने देखा, पुजारियों के दल में कौशेय वसन पहने हुए आर्य्यमित्र भी भक्ति-भाव से चल रहा है। उसकी इच्छा हुई कि आर्य्यमित्र को बुलाकर कहे कि वह उसके साथ चलने को प्रस्तुत है।

सम्पूर्ण बल से उसने पुकारा—"आर्य्यमित्र!"

किन्तु उस कोलाहल में कौन सुनता है। देवरथ विस्तीर्ण राज-पथ पर चलने लगा। उसके दृढ़ चक्र धरणी की छाती में गहरी लीक डालते हुए आगे बढ़ने लगे। उस जन-समुद्र में सुजाता फाँद पड़ी और एक क्षण में उसका शरीर देवरथ के भीषण चक्र से पिस उठा।

रथ खड़ा हो गया। स्थविर ने दृष्टि से सुजाता के शव को देखा। अभी वह कुछ बोलना ही चाहता था कि दर्शकों और पुजारियों का दल, 'काला पहाड़! काला पहाड़!!' चिल्लाता हुआ इधर-उधर भागने लगा। धूलि की घटा में बरछियों की बिजलियाँ चमकने लगीं।

देव-विग्रह एकाकी धर्मोन्मत्त 'काला पहाड़' के अश्वारोहियों से घिर गया—रथ पर था देव-विग्रह और नीचे सुजाता का शव।

ا ب پ ت ٹ ث ج چ

ح خ د ڈ ذ ر ڑ ز ژ س ش ص ض

ع غ ف ق ک گ ل

م ن و ہ ھ ی ء ے

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

गुलेरीजी का जन्म १८८३ ई० में गुलेर (कांगड़ा) में हुआ था। आपके पिता संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। वे जयपुर संस्कृत कालेज के आचार्य थे, इसलिए आप का बाल्य-काल वहीं बीता। आप की प्रतिभा का परिचय विद्यार्थी जीवन में ही मिलने लगा था। आपने एन्ट्रेंस और बी० ए० की परीक्षाए प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् अजमेर में संस्कृत के प्रधानाध्यापक नियुक्त हुए।

आप अपने गंभीर अध्ययन के कारण पुरातत्त्व, भाषा-विज्ञान, इतिहास, संस्कृत-प्राकृत और पाली के अधिकारी विद्वान् माने जाते थे। आपने उपर्युक्त विषयों पर अनेक सारगर्भित लेख लिखे थे।

१९२० ई० में आप हिन्दू विश्व-विद्यालय बनारस में प्राच्य विद्या विभाग के आचार्य नियुक्त हुए। १९२२ में आप-की मृत्यु हो गई।

आपने कुल तीन कहानियां लिखी। आपकी 'उसने कहा था' कहानी जो कि १९१५ में लिखी गई थी, न केवल हिन्दी-साहित्य में अपितु विश्व कहानी-साहित्य मे अनुपम है।

२

उसने कहा था

बड़े-बड़े शहरो के इक्के-गाड़ीवालों की ज़बान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गए हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बबूकार्टवालो की बोली का मरहम लगावें। जब बडे-बड़े शहरो की चौड़ी सड़को पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्केवाले कभी घोडे की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते है, कभी राह चलते पैदलों की आखो के न होने पर तरस खाते है, कभी उनकी पैरों की अंगुलियों के पोरों को चीथकर अपने को ही सताया हुआ बताते हैं और ससार-भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते है, तब अमृतसर मे उनकी बिरादरीवाले तग चक्करदार गलियों मे, हर एक लड्ढीवाले के लिए ठहरकर सब्र का समुद्र उमडाकर 'बचो खालसाजी' 'हटो भाईजी', 'ठहरना माई', 'आने दो लालाजी', 'हटो बाछा'—कहते हुए सफेद फेटों, खच्चरो और बत्तकों, गन्ने और खोमचे और भारेवालो के जगल मे से राह खेते है। क्या मजाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसीको हटना पड़े! यह बात नही कि उनकी जीभ चलती ही नही, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढिया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नही हटती तो उनकी वचनावली के ये नमूने है—हट जा, जीऊण जोगिए; हट जा, करमावालिए, हट जा, पुत्तां प्यारिए, बच जा, लम्मी वालिए। समष्टि में इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू भाग्यवाली है, पुत्रों को प्यारी है,

लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहियों के नीचे आना चाहती है ? बच जा ।

ऐसे बम्बूकार्टवालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दुकान पर आ मिले । उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनो सिख है । वह अपने मामा के केस धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियाँ । दुकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो सेर-भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था ।

"तेरे घर कहा है ?"

"मगरे मे... और तेरे ?"

"माझे में---यहा कहा रहती है ?"

"अतरसिंह की बैठक मे, वे मेरे मामा होते है ?"

"मै भी मामा के यहा आया हू, उनका घर गुरु बाजार मे है ।"

इतने मे दुकानदार निबटा और इनका सौदा देने लगा । सौदा लेकर दोनो साथ-साथ चले । कुछ दूर जाकर लड़के ने मुस्कराकर पूछा, "तेरी कुड़माई हो गई ?" इसपर लड़की कुछ आंखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया ।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जीवाले के यहा, या दूधवाले के यहा अकस्मात् दोनो मिल जाते । महीना-भर यही हाल रहा । दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा, "तेरी कुड़माई हो गई ?" और उत्तर मे वही 'धत्' मिला ।

एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हसी मे चिढाने के लिए पूछा तो लड़की लड़के की संभावना के विरुद्ध बोली, "हा, हो गई ।"

"कब ?"

"कल,...देखते नही यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू ।" लड़की भाग गई । लड़के ने घर की राह ली । रास्ते मे एक लड़के को मोरी मे धकेल दिया, एक छाबड़ीवाले की दिन-भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभीवाले के ठेले मे दूध उंडेल दिया । सामने नहाकर

आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अन्धे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुंचा।

२

"राम-राम ! यह भी कोई लड़ाई है ! दिन-रात खदकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गई। लुधियाना से दस गुना जाड़ा, और मेह और बरफ ऊपर से। पिडलियों तक कीचड मे धसे हुए हैं। गनीम कहीं दिखता नहीं—घटे दो घटे मे कान के परदे फाडनेवाले धमाके के साथ सारी खदक हिल जाती है और सौ-सौ गज धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े ! नगरकोट का जलजला सुना था, यहा दिन में पचीस जलजले होते है। जो कही खदक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए या घास की पत्तियों में छिपे रहते है।"

"लहनासिह, और तीन दिन हैं। चार तो खदक में बिता ही दिए ! परसों 'रिलीफ' आ जाएगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों 'झटका' करेंगे और पेट-भर खाकर सो रहेंगे। उसी फिरगी मेम के बाग में—मखमल की-सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते है, दाम नहीं लेती। कहती है, 'तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो।' "

"चार दिन तक पलक नही झंपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लडे सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाए। फिर सात जर्मनो को अकेला मारकर न लौटूं तो मुझे दरबारसाहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कही के, कलों के घोड़े संगीन देखते ही मुंह फाड देते है और पैर पकडने लगते है। यों अंधेरे में तीस-तीस मन का गोला फेंकते है। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल साहब ने हट जाने का कमान दिया ; नहीं तो···।"

"नहीं तो सीधे बर्लिन पहुंच जाते, क्यों !" सूबेदार हजारासिंह ने

मुस्कराकर कहा, "लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाए नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गए तो क्या होगा ?"

"सूबेदारजी, सच है," लहनासिंह बोला, "पर करें क्या ? हड्डियों में जो जाड़ा धंस गया है। सूर्य निकलता नही और खाई में दोनों तरफ से चंबे की बावलियों के से सोते भर रहे हैं। एक धावा हो जाए तो गर्मी आ जाए।"

"उदमी, उठ, सिगड़ी में कोयले डाल। वजीरा, तुम चार जने बाल्टियां लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाजे का पहरा बदल दे।" यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गदला पानी भरकर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला, "मैं पाधा बन गया हूं। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण।" इसपर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गए।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा, "अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब-भर में नहीं मिलेगा।"

"हां, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमाव जमीन यहां मांग लूंगा और फलों के बूटे लगाऊंगा।"

"लाड़ी होरां को भी यहां बुला लोगे ? या वही दूध पिलाने वाली फिरंगी मेम—"

"चुप कर। यहांवालों को शर्म नहीं।"

"देस-देस की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तम्बाकू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, होंठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूं तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुल्क के लिए लड़ेगा नहीं !"

"अच्छा, अब बोधसिंह कैसा है ?

"अच्छा है ।"

"जैसे मैं जानता ही न होऊ । रात-भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे ओढाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो । उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो । अपने सूखे लकडी के तख्तो पर उसे सुलाते हो, आप कीचड मे पडे रहते हो । कही तुम न मादे पड जाना । जाड़ा क्या है, मौत है, और निमोनिया से मरनेवालों को मुरब्बे नही मिला करते ।"

"मेरा डर मत करो ! मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूगा । भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाए हुए आगन के आम के पेड़ की छाया होगी ।"

वज़ीरासिंह ने त्योरी चढाकर कहा, "क्या मरने-मारने की बात लगाई है ?"

इतने मे एक कोने से पजाबी गीत की आवाज सुनाई दी । सारी खदक गीत से गूज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गए, मानो चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों ।

३

दो पहर रात हो गई है । अधेरा है । सन्नाटा छाया हुआ है । बोधासिंह खाली बिस्कुटों के तीन टीनो पर अपने दोनों कम्बल बिछाकर और लहनासिंह के दो कम्बल और एक बरानकोट ओढकर सो रहा है । लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है । एक आख खाई के मुह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर ।

बोधासिंह कराहा ।

"क्यो बोधा भाई, क्या है ?"

"पानी पिला दो ।"

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुह से लगाकर पूछा, "कहो, कैसे हो ?"

पानी पीकर बोधासिंह बोला, "कपनी छूट रही है, रोम-रोम मे तार दौड़ रहे हैं । दांत बज रहे हैं ।"

"अच्छा, मेरी जरसी पहन लो।"

"और तुम?"

"मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है, पसीना आ रहा है।"

"ना, मै नही पहनता, चार दिन से तुम मेरे लिए…"

"हां, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सवेरे ही आई है। विलायत से मेमे बुन-बुनकर भेज रही है। गुरु उनका भला करे।" यों कहकर लहना अपना कोट उतारकर जरसी उतारने लगा।

"सच कहते हो?"

"और नही झूठ?" यों कहकर नाहीं करते बोधा को उसने जबर-दस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता-भर पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घंटा बीता। इतने मे खाई के मुह से आवाज आई, "सूबेदार हजारासिह!"

"कौन? लपटन साहब? हुकुम हुजूर!" कहकर सूबेदार तनकर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

"देखो, इसी समय धावा करना होगा। मील-भर दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमे पचास से ज़ियादह जर्मन नही है। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काटकर रास्ता है। तीन-चार घुमाव है। जहाँ मोड है, वहा पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूं। तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सबको साथ ले उनसे जा मिलो। खन्दक छीनकर वहीं, जबतक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहां रहेगा।"

"जो हुक्म।"

चुपचाप सब तैयार हो गए। बोधा भी कम्बल उतारकर चलने लगा। तब लहनासिह ने उसे रोका। लहनासिह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिह समझ-कर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहे, इसपर बड़ी हुज्जत हुई।

"अरहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। पटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुह फेरकर खड़े हो गए और जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा

"लो, तुम भी पियो।"

आंख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुह का भाव छिपा कर बोला, "लाओ साहब।" हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले मे साहब का मुँह देखा, बाल देखे, तब उसका माथा ठनका लपटन साहब के पट्टियोंवाले बाल एक दिन मे कहाँ उड गए और उनकी जगह कैदियो के से कटे हुए बाल कहाँ से आ गए ?

शायद साहब शराब पिए हुए है और उन्हे बाल कटवाने का मौका मिल गया है ! लहनासिंह ने जांचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजिमेट मे थे।

"क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जाएगे ?"

"लडाई खत्म होने पर। क्यो, क्या यह देश पसन्द नही ?"

"नही साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहाँ ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम-आप जगाधरी के जिले मे शिकार करने गए थे" "हां, हा" वही जब आप खोते पर सवार थे और आपका खानसामा अबदुल्ला रास्ते के एक मन्दिर मे जल चढाने को रह गया था !" "बेशक, पाजी कही का" "सामने से वह नील गाय निकली, ऐसी बड़ी कि मैंने कभी न देखी थी। और आपकी एक गोली कधे मे लगी और पुट्ठे में से निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने मे मज़ा आता है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नील गाय का सिर आ गया था न ? "पाने कहा था कि रेजिमेट की मेस मे लगाएगे ?" "हा, पर मैंने वह लहनासिंह को दिया" "ऐसे बड़े-बड़े सीग। दो-दो फुट के तो होंगे ?"

पानी पीकर बोधासिंह दो फुट चार इच के थे। तुमने सिगरेट नहीं पी रहे हैं। दांत बज रहे है।

"पीता हूं साहब, दियासलाई ले आता हूं,"—कहकर लहनासिंह खन्दक मे घुसा। अब उसे सन्देह नही रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया था कि क्या करना चाहिए।

अंधेरे मे किसी सोनेवाले से वह टकराया।

४

"कौन ? वजीरासिंह ?"

"हां, क्यों लहना ? क्या, कयामत आ गई ? जरा तो आंख लगने दी होती।"

"होश मे आओ। कयामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहनकर आई है।"

"क्यों ?"

"लपटन साहब या तो मारे गए है या कैद हो गए है। उनकी वर्दी पहनकर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुह नही देखा। मैने देखा है और बाते की है। सोहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू ! और मुझे पीने को सिगरेट दिया है।"

"तो अब ?"

"अब मारे गए। धोखा है ! सूबेदार कीचड़ मे चक्कर काटते फिरेगे और यहा खाई पर धावा होगा। उधर उनपर खुले मे धावा होगा। उठो, एक काम करो। पलटन के पैरो के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गए होगे। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आवे। खन्दक की बात झूठ है। चले जाओ, खन्दक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।"

"हुक्म तो यह है कि यही…"

"ऐसी-तैसी हुकुम की ! मेरा हुकुम—जमादार लहनासिह जो इस वक्त यहां सबसे बड़ा अफसर है, उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की खबर लेता हूं।"

"पर यहां तो तुम आठ हो।"

"आठ नहीं दस लाख। एक-एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।"

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर के तीन गोले निकाले। तीनों को जगह-जगह खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार-सा बांध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ जाकर दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने···

बिजली की तरह दोनों हाथों से उलटी बन्दूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तानकर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गरदन पर मारा और साहब "आह! मीन गोट्ट" कहते हुए चित्त हो गए। लहनासिंह ने तीनों गोले बीनकर खन्दक के बाहर फेंके और साहब को घसीटकर सिगड़ी के पास से हटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफाफे और एक डायरी निकालकर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हंसकर बोला, "क्यों लपटन साहब! मिजाज कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखी। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के ज़िले में नीलगायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते है और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहां से सीख आए? हमारे लपटन साहब तो बिना 'डैम' के पाच लफ्ज भी नहीं बोला करते थे।"

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानो जाड़े से बचने के लिए, दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनासिंह कहता गया, "चालाक तो बड़े हो पर मांझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आंखें चाहिए। तीन महीने हुए, एक तुरकी मौलवी मेरे गांव में आया

था। औरतों को बच्चे होने के ताबीज बाटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मजा बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनीवाले बडे पण्डित हैं। वेद पढकर उनमें से बिमान चलाने की विद्या जान गए है। गौ को नही मारते। हिन्दुस्तान मे आ जाएगे तो गोहत्या बन्द कर देंगे। मण्डी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपये निकाल लो, सरकार का राज्य जानेवाला है। डाकबाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैने मुल्लाजी की दाढ़ी मूंड दी थी और गाव से बाहर निकालकर कहा था कि जो मेरे गांव में अब पैर रखा तो···"

साहब की जेब मे से पिस्तौल चला और लहना की जांघ में गोली लगी। इधर लहना की हैनरी मार्टिनी के दो फायरों ने साहब की कपाल-क्रिया कर दी। धडाका सुनकर सब दौड़े आए।

बोधा चिल्लाया, "क्या है?"

लहनासिह ने उसे तो यह कहकर सुला दिया कि, 'एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया', और औरो से सब हाल कह दिया। बन्दूकें लेकर सब तैयार हो गए। लहना ने साफा फाड़कर घाव के दोनो तरफ पट्टियां कसकर बाधी। घाव मास मे ही था। पट्टियो के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

इतने मे सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई मे घुस पड़े। सिक्खों की बन्दूको की बाढ ने पहले धावे को रोका, दूसरे को रोका। पर यहां थे आठ (लहनासिंह तक-तककर मार रहा था—वह खड़ा था, और, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढकर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोड़े-से मिनटों मे वे—

अचानक आवाज आई, "वाह गुरुजी की फतह! वाह गुरुजी का खालसा।" और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गए। पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह

के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछेवालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और, "अकाल सिक्खां दी फौज आई! वाह गुरुजी दी फतह! वाह गुरुजी दा खालसा!! सत श्री अकाल पुरख!!!" और लडाई खत्म हो गई। तिरसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गए। सूबेदार के दाहिने कंधे में से गोली आरपार निकल गई। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खदक की गोली मिट्टी से पूर लिया और बाकी को साफा कसकर कमर-बन्द की तरह लपेट लिया। किसीको खबर न हुई कि लहना को दूसरा घाव—भारी घाव—लगा है।

लड़ाई के समय चांद निकल आया था। ऐसा चांद जिसके प्रकाश में संस्कृत कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसा कि बाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य' कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन-भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपट रही थी, जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और कागजात पाकर वे उसकी तुरंतबुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज तीन मील दाहिनी ओर की खाईवालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहां से झटपट दो डाक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियां चलीं, जो कोई डेढ़ घण्टे के अन्दर-अन्दर आ पहुंची। फील्ड अस्पताल नजदीक था। सुबह होते-होते वहां पहुंच जाएंगे, इसलिए मामूली पट्टी बांधकर एक गाड़ी में घायल लिटाए गए और दूसरी में लाशें रखी गईं। सूबेदार ने लहनासिंह की जांघ में पट्टी बंधवानी चाही। पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है, सवेरे देखा जाएगा। बोधासिंह ज्वर में कराह रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहनासिंह को छोड़कर सूबेदार जाते नहीं

थे । यह देख लहना ने कहा, "तुम्हे बोधा की कसम है, सूबेदारनी की सौगन्ध है, जो इस गड़ी में न चले जाओ ।"

"और तुम ?"

"मेरे लिए वहा पहुंचकर गाड़ी भेज देना । और जर्मन मुरदों के लिए भी तो गाडियां आती होंगी । मेरा हाल बुरा नही है । देखते नहीं मै खड़ा हूं ! वजीरासिह मेरे पास है ही ।"

'अच्छा, पर-"

"बोधा गाड़ी पर लेट गया ? भला. आप भी चढ जाओ । सुनिए तो, सूबेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था-टेकना लिख देना, और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होंने कहा था, वह मैंने कर दिया ।"

गाड़ियां चल पड़ी थी । सूबेदार ने चढते-चढते लहना का हाथ पकड़कर कहा, "तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाए है । लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेगे । अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना । उसने क्या कहा था ?"

"अब आप गाड़ी में चढ़ जाओ । मैने जो कुछ कहा, वह लिख देना और कह भी देना ।"

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया, "वजीरा. पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे । तर हो रहा है ।"

५

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है । जन्म-भर की घटनाएं एक-एक करके सामने आती हैं । सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं । समय की धुन्ध बिलकुल उनपर से हट जाती है ।

लहनासिंह बारह वर्ष का है । अमृतसर में मामा के यहां आया हुआ है । दहीवाले के यहा, सब्जीवाले के यहां, हर कहीं उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है । जब वह पूछता है कि तेरी कुड़माई हो गई ? तब 'धत्' कहकर वह भाग जाती है । एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो

उसने कहा, 'हां, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलोंवाला सालू !'
सुनते ही लहनासिंह को बहुत दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ ?

"वज़ीरासिंह, पानी पिला दे !"

पच्चीस वर्ष बीत गए। अब लहनासिंह नं० ७७ राइफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर ज़मीन के मुकदमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहां रेजिमेंट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है। फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हज़ारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ चलेंगे। सूबेदार का गांव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहां पहुंचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार बेड़े में से निकलकर आया। बोला, "लहना, सूबेदारनी तुमको जानती है। बुलाती है। जा, मिल आ।" लहनासिंह भीतर पहुंचा। सूबेदारनी मुझे जानती है ? कब से ? रेजिमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाज़े पर जाकर 'मत्था टेकना' कहा। असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

'मुझे पहचाना ?'

'नहीं।'

'तेरी कुड़माई हो गई ? ··धत्···कल हो गई···देखते नहीं रेशमी बूटेवाला सालू···अमृतसर में···'

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

"वजीरा, पानी पिला", 'उसने कहा था।'

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है, 'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूं। मेरे तो भाग फूट गए। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायपुर में ज़मीन दी है, आज नमक-हलाली

का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों की एक घघरिया-पलटन क्यों न बना दी जो मैं भी सूबेदारजी के साथ चली जाती ? एक बेटा है। फौज में भरती हुए उसे एक ही वर्ष हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।' सूबेदारनी रोने लगी, 'अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग ! तुम्हें याद है, एक दिन टांगेवाले का घोड़ा दही-वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। आप घोड़ों की लातों मे चले गए थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मे आंचल पसारती हूं।'

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी मे चली गई। लहना भी आंसू पोंछता हुआ बाहर आया।

"वजीरासिंह, पानी पिला,..."—'उसने कहा था।'

लहना का सिर अपनी गोदी पर रखे वज़ीरासिंह बैठा है। जब मागता है, तब पानी पिला देता है। आधे घण्टे तक लहना चुप रहा, फिर बोला :

"कौन ? कीरतसिंह ?"

वज़ीरा ने कुछ समझकर कहा, "हां।"

"भैया, मुझे और ऊंचा कर ले। अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।"

वज़ीरा ने वैसा ही किया।

"हां, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस, अब के हाड़ मे यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यही बैठकर आम खाना। जितना बडा मेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने में उसका जन्म हुआ था, उसी महीने मे मैंने उसे लगाया था।"

वज़ीरासिंह के आंसू टप-टप टपक रहे थे।

कुछ दिनों पीछे लोगो ने अखबारों मे पढ़ —

फ्रांस और बेलजियम—६८ वीं सूची—मैदान में घावों से मरा—नं० ७७ सिख राइफल्स, जमादार लहनासिंह।

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

कौशिकजी का जन्म १८६१ मे अम्बाला में एक साधारण ब्राह्मण-परिवार में हुआ। चार वर्ष की अवस्था में ही आप अपने एक बाबा के पास कानपुर चले गए जो निःसन्तान थे।

आप की स्कूली शिक्षा उर्दू-फारसी के साथ दसवीं तक हुई। हिन्दी तथा संस्कृत का ज्ञान आपने घर पर ही पढ़कर प्राप्त किया।

पहले आप का झुकाव कविता लिखने की ओर था। 'शागिव' उपनाम से उर्दू में कुछ कविताएं आपने लिखी थीं। बाद में आप आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्पर्क में आए और हिन्दी में कहानियां लिखने लगे। विजयानन्द दुबे के नाम से आपने कुछ हास्य रस के पत्र भी लिखे है। वह संग्रह 'दुबे जी का चिट्ठा' के नाम से प्रकाशित है। बंगला से कुछ अनुवाद-कार्य भी आपने किया है।

आपकी भाषा सरल, सहज किन्तु प्रभावपूर्ण है। रक्षा-बन्धन आपकी प्रथम कहानी है, जो १९१२ ई० में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी।

आपने दो उपन्यास तथा कई कहानियाँ लिखी हैं।

३

रक्षा-बन्धन

"मा, मैं भी राखी बाधूगी ।"

श्रावण की धूमधाम है । नगरवासी स्त्री-पुरुष बड़े आनन्द तथा उत्साह से श्रावणी का उत्सव मना रहे है । बहनें भाइयो के और ब्राह्मण अपने यजमानों के राखियां बाध-बाधकर चांदी कर रहे है । ऐसे ही समय एक छोटे-से घर मे एक दस वर्ष की बालिका ने अपनी माता से कहा, "मां, मैं भी राखी बांधूगी ।"

उत्तर मे माता ने एक ठंठी सांस भरी और कहा, "किसके बांधेगी बेटी, आज तेरा भाई होता तो ··।"

माता आगे कुछ कह न सकी । उसका गला रुंध गया और नेत्र अश्रुपूर्ण हो गए ।

अबोध बालिका ने इठलाकर कहा, "तो क्या भैया ही के राखी बांधी जाती है और किसी के नहीं ? भइया नहीं है तो अम्मां, मैं तुम्हारे ही राखी बांधूगी ।"

इस दुःख के समय भी पुत्री की बात सुनकर माता मुस्कराने लगी और बोली, "अरी तू इतनी बडी हो गई, भला कही मां के भी राखी बांधी जाती है ।"

बालिका ने कहा, "वाह, जो पैसा दे उसीके राखी बांधी जाती है ।"

माता—"अरी कंगली ! पैसे पर नहीं—भाई ही के राखी बांधी जाती है ।"

बालिका उदास हो गई।

माता घर का काम-काज करने लगी। घर का काम शेष करके उसने पुत्री से कहा, "आ तुझे न्हिला (नहला) दू।"

बालिका मुख गम्भीर करके बोली, "मै नहीं नहाऊगी।"

माता—क्यों, नहाएगी क्यों नहीं ?

बालिका—मुझे क्या किसी के राखी बाधनी है ?

माता—अरी राखी नही बाधनी है तो क्या नहाएगी भी नही ? आज त्योहार का दिन है। चल उठा नहा।

बालिका— राखी नही बाँधूगी तो तिवहार काहे का ?

माता—(कुछ क्रुद्ध होकर) अरी कुछ सिड़न हो गई है। राखी-राखी रट लगा रखी है। बड़ी राखी बाधनेवाली बनी है। ऐसी ही होती तो आज यह दिन देखना पड़ता ! पैदा होते ही बाप को खा बैठी। ढ़ाई बरस की होने-होते भाई ने घर छुडा दिया। तेरे ही कर्मो से सबनास (सर्वनाश) हो गया।

बालिका बडी अप्रतिभ हुई और आखो मे आसू भरे हुए चुपचाप नहाने को उठ खडी हुई।

* * *

एक घटा पश्चात् हम उसी बालिका को उसके घर के द्वार पर खड़े देखते है। इस समय भी उसके सुन्दर मुख पर उदासी विद्यमान है। अब भी उसके बड़े-बड़े नेत्रों मे पानी छलछला रहा है।

परन्तु बालिका इस समय द्वार पर क्यों ? जान पड़ता है, वह किसी कार्यवश खडी है, क्योंकि उसके द्वार के सामने से जब कोई निकलता है, तब वह बडी उत्सुकता से उसकी ओर ताकने लगती है। मानो वह मुख से कुछ कहे बिना केवल इच्छा-शक्ति ही से, पुरुष का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने की चेष्टा करती थी, परन्तु जब इसमे उसे सफलता नही होती, तब उसकी उदासी बढ जाती है।

इसी प्रकार एक, दो, तीन करके कई पुरुष, बिना उसकी ओर देखे,

निकल गए ।

अन्त को बालिका निराश होकर घर के भीतर लौट जाने को उद्यत ही हुई थी कि एक सुन्दर युवक की दृष्टि, जो कुछ सोचता हुआ धीरे-धीरे जा रहा था, बालिका पर पड़ी । बालिका की आंखें युवक की आंखों से जा लगी । न जाने उन उदास तथा करुणापूर्ण नेत्रों में क्या जादू भरा था कि युवक ठिठककर खड़ा हो गया और बड़े ध्यान से सिर-पैर तक देखने लगा । ध्यान से देखने पर युवक को ज्ञात हुआ कि बालिका की आंखें अश्रुपूर्ण हैं । तब वह अधीर हो उठा । निकट जाकर पूछा, "बेटी, क्यों रोती हो ?"

बालिका इसका कुछ उत्तर न दे सकी । परन्तु उसने अपना एक हाथ युवक की ओर बढ़ा दिया । युवक ने देखा, बालिका के हाथ में एक लाल डोरा है । उसने पूछा, "यह क्या है ?" बालिका ने आखें नीची करके उत्तर दिया, 'राखी" । युवक समझ गया । उसने मुस्कराकर अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ा दिया ।

बालिका का मुख-कमल खिल उठा । उसने बड़े चाव से युवक के हाथ मे राखी बाध दी ।

राखी बंधवा चुकने पर युवक ने जेब मे हाथ डाला और दो रुपये निकालकर बालिका को देने लगा । परन्तु बालिका ने उन्हें लेना स्वीकार न किया । बोली, "नही, पैसे दो ।"

युवक—ये पैसे से भी अच्छे है ।

बालिका—नहीं, मैं पैसे लूँगी, यह नही ।

युवक—ले लो बिटिया, इसके पैसे मगा लेना । बहुत-से मिलेगे ।

बालिका—नहीं, पैसे दो ।

युवक ने चार आने पैसे निकालकर कहा, "अच्छा, पैसे भी ले और यह भी ले ।"

बालिका—नहीं, खाली पैसे लूगी ।

"तुझे दोनों लेने पड़ेंगे।" यह कहकर युवक ने बलपूर्वक पैसे तथा रुपये बालिका के हाथ पर रख दिए।

इतने में घर के भीतर से किसीने पुकारा, "अरी सरसुती (सरस्वती) कहां गई ?"

बालिका ने 'आई' कहकर युवक की ओर कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि डाली और चली गई।

२

गोलागंज (लखनऊ) की एक बड़ी तथा सुन्दर अट्टालिका के एक सुसज्जित कमरे में एक युवक चिंता-सागर में निमग्न बैठा है। कभी वह ठण्डी सांसें भरता है, कभी रूमाल से आँखें पोछता है, कभी आप ही आप कहता है, 'हा ! सारा परिश्रम व्यर्थ गया। सारी चेष्टाएं निष्फल हुईं। क्या करूं ? कहाँ जाऊं। उन्हें कहां ढूँढ़ू। सारा उन्नाव छान डाला, परन्तु फिर भी पता न लगा।' युवक आगे कुछ और कहने को था कि कमरे का द्वार खुला और नौकर अन्दर आया।

युवक ने विरक्त होकर पूछा, "क्यों, क्या है ?"

नौकर—सरकार, अमरनाथ बाबू आए हैं।

युवक—(सभलकर) अच्छा, यहीं भेज दो।

नौकर के चले जाने पर युवक ने रूमाल से आंखें पोंछ डालीं और मुख पर गम्भीरता लाने की चेष्टा करने लगा।

द्वार फिर खुला और एक युवक अन्दर आया।

युवक—आओ भाई अमरनाथ !

अमरनाथ—कहो घनश्याम, आज अकेले कैसे बैठे हो ? कानपुर से कब लौटे ?

घनश्याम—कल आया था।

अमरनाथ—उन्नाव भी अवश्य ही उतरे होगे ?

घनश्याम—(एक ठण्डी सांस भरकर) हां, उतरा था। परन्तु व्यर्थ ! वहां अब मेरा क्या रखा है ?

अमरनाथ—परन्तु करोगे क्या ? हृदय नहीं मानता है क्यों ? और सच पूछो तो बात ही ऐसी है। यदि तुम्हारे स्थान पर मैं होता तो मैं भी ऐसा ही करता।

घनश्याम—क्या कहूं मित्र, मै तो हार गया। तुम तो जानते ही हो कि मुझे लखनऊ आकर रहते एक वर्ष हो गया और जब से यहा आया हूं उन्हें ढूंढने में कुछ भी कसर उठा नहीं रखी, परन्तु सब व्यर्थ।

अमरनाथ—उन्होने उन्नाव न जाने क्यों छोड़ दिया और कब छोड़ा—इसका भी कोई पता नहीं चलता।

घनश्याम—इसका तो पता चल गया न, कि वे लोग मेरे चले जाने के एक वर्ष पश्चात् उन्नाव से चले गए। परन्तु कहां चले गए, यह नहीं मालूम।

अमरनाथ—यह किससे मालूम हुआ ?

घनश्याम—उसी मकानवाले से, जिसके मकान मे हम लोग रहते थे।

अमरनाथ—हा शोक !

घनश्याम—कुछ नहीं, यह सब मेरे ही कर्मों का फल है। यदि मै उन्हें छोड़कर न जाता, यदि गया था तो उनकी खोज-खबर लेता रहता परन्तु मैं तो दक्षिण जाकर रुपया कमाने मे इतना व्यस्त रहा कि कभी याद ही न आई। और जो आई भी तो क्षण-मात्र के लिए। उफ, क्या कोई अपने घर को भी भूल जाता है ! मैं ही ऐसा अधम···

अमरनाथ—(बात काटकर) अजी नहीं, सब समय की बात है।

घनश्याम—मैं दक्षिण न जाता तो अच्छा था।

अमरनाथ—तुम्हारा दक्षिण जाना तो व्यर्थ नही हुआ। यदि न जाते तो इतना धन···

घनश्याम—अजी चूल्हे में जाए धन ! ऐसा धन किस काम का ? मेरे हृदय मे सुख-शांति नहीं, तो धन किस मर्ज की दवा है ?

अमरनाथ—ऐ, यह हाथ में लाल डोरा क्यों बांधा है ?

घनश्याम—इसकी तो बात ही भूल गया। यह राखी है।

अमरनाथ—भाई वाह, अच्छी राखी है! लालडोरे को राखी बनाते हो। यह किसने बांधी है? किसी बड़े कजूस ब्राह्मण ने बाधी होगी। दुष्ट ने एक पैसा तक खरचना पाप समझा। डोरे से ही काम निकाला।

घनश्याम—ससार में यदि कोई बढ़िया से बढ़िया राखी बन सकती है तो मुझे उससे भी कहीं अधिक प्यारा यह लाल डोरा है।—यह कहकर घनश्याम ने उसे खोलकर बड़े यत्नपूर्वक अपने बक्स मे रख लिया।

अमरनाथ—भई, तुम भी विचित्र मनुष्य हो। आखिर यह डोरा बाधा किसने है?

घनश्याम—एक बालिका ने।

पाठक समझ गए होंगे कि घनश्याम कौन है।

अमरनाथ—बालिका ने कैसे बाधा और कहा?

घनश्याम—कानपुर में।

घनश्याम ने सारी घटना कह सुनाई।

अमरनाथ—यदि यह बात है तो सत्य ही यह डोरा अमूल्य है।

घनश्याम—न जाने क्यों, उस बालिका का ध्यान मेरे मन से नहीं उतरता।

अमरनाथ—उसकी सरलता तथा प्रेम ने तुम्हारे हृदय पर प्रभाव डाला है। भला उसका नाम क्या है?

घनश्याम—नाम तो मुझे नहीं मालूम। भीतर मे किसीने उसका नाम लेकर पुकारा। परन्तु मैं सुन न सका।

अमरनाथ—अच्छा, खैर! अब तुमने क्या करना विचारा है?

घनश्याम—धैर्य धरकर चुपचाप बैठने के अतिरिक्त और मैं कर ही क्या सकता हूँ। मुझसे जो हो सका, मै कर चुका।

अमरनाथ—हां, यही ठीक भी है। ईश्वर पर छोड़ दो! देखो क्या होता है।

३

पूर्वोक्त घटना हुए पाँच वर्ष व्यतीत हो गए। घनश्यामदास पिछली बातें प्राय: भूल गए हैं। परन्तु उस बालिका की याद कभी-कभी आ जाती है। उसे देखने वे एक बार कानपुर गए भी थे परन्तु उसका पता न चला। उस घर में पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह वहाँ से, अपनी माता-सहित, बहुत दिन हुए न जाने कहाँ चली गई। इसके पश्चात् ज्यों-ज्यों समय बीतता गया उसका ध्यान भी कम होता गया। पर अब भी जब वे अपना बक्स खोलते हैं तब कोई वस्तु देखकर चौंक पड़ते हैं और साथ ही कोई पुराना दृश्य आँखों के सामने आ जाता है।

घनश्याम अभी तक अविवाहित हैं। पहले तो उन्होंने निश्चय कर लिया था कि विवाह करेंगे ही नहीं। पर मित्रों के कहने और स्वयं अपने अनुभव ने उनका यह विचार बदल दिया। अब वे विवाह करने पर तैयार हैं। परन्तु अभी तक कोई कन्या उनकी रुचि के अनुसार नहीं मिली।

जेठ का महीना है। दिन-भर की जला देनेवाली धूप के पश्चात् सूर्यास्त का समय अत्यन्त सुखदायी प्रतीत हो रहा है। इस समय घन-श्यामदास अपनी कोठी के बाग में मित्रों-सहित बैठे मन्द-मन्द शीतल वायु का आनन्द ले रहे हैं। आपस में हास्यरसपूर्ण बातें हो रही हैं। बातें करते-करते एक मित्र ने कहा, "अजी अभी तक अमरनाथ नहीं आए?"

घनश्याम---वह मनमौजी आदमी है। कहीं रम गया होगा।

दूसरा---नहीं, रमा नहीं, वह आजकल तुम्हारे लिए दुलहिन ढूँढ़ने की चिन्ता में रहता है।

घनश्याम---बड़े दिल्लगीबाज हो!

दूसरा---नहीं, दिल्लगी की बात नहीं है।

तीसरा---हाँ, परसों मुझसे भी कहता था कि घनश्याम का विवाह हो जाए तो मुझे चैन पड़े।

ये बातें हो ही रही थीं कि अमरनाथ लपकते हुए आ पहुंचे।

घनश्याम—आओ यार, बडी उमर है—अभी तुम्हारी ही याद हो रही थी।

अमरनाथ—इस समय बोलिए नही, नही एकाध को मार बैठूगा।

दूसरा—जान पड़ता है, कहीं से पिटकर आए हो।

अमरनाथ—तू फिर बोला—क्यों ?

दूसरा—क्यों, बोलना किसीके हाथ क्या बेच खाया है ?

अमरनाथ—अच्छा, दिल्लगी छोड़ो, एक आवश्यक बात है।

सब उत्सुक होकर बोले, "कहो, कहो, क्या बात है ?"

अमरनाथ—(घनश्याम से) तुम्हारे लिए दुलहिन ढूढ ली है।

सब—(एक स्वर से) फिर क्या, तुम्हारी चाँदी है।

अमरनाथ—फिर वही दिल्लगी। यार, तुम लोग अजीब आदमी हो !

तीसरा—अच्छा बताओ, कहाँ ढूँढी ?

अमरनाथ—यहीं, लखनऊ मे।

दूसरा—लडकी का पिता क्या करता है ?

अमरनाथ—पिता तो स्वर्गवास करता है।

तीसरा—यह बुरी बात है।

अमरनाथ—लड़की है और उसकी माँ। बस, तीसरा कोई नहीं। विवाह मे कुछ मिलेगा भी नहीं। लड़की की माता बडी गरीब है।

दूसरा—यह उससे भी बुरी बात है।

तीसरा—उल्लू मर गए, पट्ठे छोड़ गए। घर भी ढूंढा तो गरीब। कहाँ हमारे घनश्याम इतने धनाढ्य और कहाँ ससुराल इतनी दरिद्र ! लोग क्या कहेगे ?

अमरनाथ—अरे भाई, कहने और न कहनेवाले हमी-तुम है। और यहाँ उसका कौन बैठा है, जो कहेगा।

घनश्यामदास ने ठण्डी साँस ली।

तीसरा—आपने क्या भलाई देखी जो यह सम्बन्ध करना विचारा है।

अमरनाथ—लड़की की भलाई। लड़की लक्ष्मी-रूपा है। जैसी सुन्दर, वैसी ही सरल। ऐसी लड़की यदि दीपक लेकर ढूंढ़ी जाए तो भी कदाचित् ही मिले।

दूसरा—हाँ, यह अवश्य एक बात है।

अमरनाथ—परन्तु लड़की की माता लड़का देखकर विवाह करने को कहती है।

तीसरा—यह तो व्यवहार की बात है।

घनश्याम—और, मैं भी लड़की देखकर विवाह करूंगा।

दूसरा—यह भी ठीक ही है।

अमरनाथ—तो इसके लिए क्या विचार है ?

तीसरा—विचार क्या, लड़की देखेंगे।

अमरनाथ—तो कब ?

घनश्याम—कल।

४

दूसरे दिन शाम को घनश्याम और अमरनाथ गाड़ी पर सवार होकर लड़की देखने चले। गाड़ी चक्कर खाती हुई अहियागंज की एक गली के सामने जा खड़ी हुई। गाडी से उतरकर दोनो मित्र गली मे घुसे। लगभग सौ कदम चलकर अमरनाथ एक छोटे-से मकान के सामने खड़े हो गए और मकान का द्वार खटखटाया।

घनश्याम बोले, "मकान देखने से तो बड़े गरीब जान पड़ते है।"

अमरनाथ—हाँ, बात तो ऐसी ही है, परन्तु यदि लड़की तुम्हारे पसन्द आ जाए तो यह सब सहन किया जा सकता है।

इतने मे द्वार खुला और दोनों भीतर गए। सन्ध्या हो जाने के कारण मकान मे अंधेरा हो गया था। अतएव ये लोग द्वार खोलनेवाले को स्पष्ट न देख सके।

एक दालान में पहुंचने पर वे दोनों चारपाइयों पर बिठा दिए गए और बिठानेवाली ने, जो स्त्री थी, कहा, "मैं जरा दिया जला लूं।"

अमरनाथ—हाँ जला लो।

स्त्री ने दीपक जलाया और पास ही एक दीवट पर उसे रख दिया, फिर इनकी ओर मुख करके वह नीचे चटाई पर बैठ गई। परन्तु ज्योंही उसने घनश्याम पर अपनी दृष्टि डाली—एक हृदयभेदी आह उसके मुख से निकली—और वह ज्ञानशून्य होकर गिर पडी।

स्त्री की ओर कुछ अधेरा था, इस कारण उन लोगों को उसका मुख स्पष्ट न दिखाई पड़ता था। घनश्याम उसे उठाने को उठे। परन्तु ज्योंही उन्होंने उसका सिर उठाया और रोशनी उसके मुख पर पड़ी त्योंहि घनश्याम के मुख से निकला, "मेरी माता!" और उठकर वे भूमि पर बैठ गए।

अमरनाथ विस्मित हो काष्ठवत् बैठे रहे। अन्त को कुछ क्षण उपरान्त बोले, "उफ. ईश्वर की महीमा बड़ी विचित्र है। जिनके लिए तुमने न जाने कहा-कहा की ठोकरें खाई वे अन्त को इस प्रकार मिले।"

घनश्याम अपने को सभालकर बोले, "थोडा पानी मंगवाओ।"

अमरनाथ—किससे मगाऊ? यहां तो कोई और दिखाई ही नही पड़ता। परन्तु हां, वह लड़की तुम्हारी···कहते-कहते अमरनाथ रुक गए। फिर उन्होंने पुकारा, "बिटिया, थोडा पानी दे जाओ।" परन्तु कोई उत्तर न मिला।

अमरनाथ ने फिर पुकारा, 'बेटी, तुम्हारी मा अचेत हो गई है। थोड़ा पानी दे जाओ।"

इस 'अचेत' शब्द में न जाने क्या बात थी कि तुरन्त ही घर के दूसरी ओर बरतन खड़कने का शब्द हुआ। तत्पश्चात् एक पूर्ण वयस्का लड़की लोटा लिए आई। लड़की मुह कुछ ढके हुए थी। अमरनाथ ने पानी लेकर घनश्याम की माता को आखें तथा मुख धो दिया। थोड़ी देर में उसे होश आया। उसने आखें खोलते ही फिर घनश्याम को देखा। तब वह शीघ्रता से उठकर बैठ गई और बोली, "ऐ, मैं क्या स्वप्न देख रही हूं? घनश्याम क्या तू मेरा खोया हुआ घनश्याम है? या कोई और?"

माता ने पुत्र को उठाकर छाती से लगा लिया और अश्रुबिन्दु विसर्जन किए। परन्तु वे बिन्दु सुख के थे अथवा दु.ख के, कौन कहे ?

लड़की ने यह सब देख-सुनकर अपना मुह खोल दिया और 'भैया-भैया' कहती हुई घनश्याम से लिपट गई। घनश्याम ने देखा लड़की कोई और नहीं, वही बालिका है जिसने पांच वर्ष पूर्व उनके राखी बांधी थी और जिसकी याद प्राय: उन्हें आया करती थी।

श्रावण का महीना है और श्रावणी का महोत्सव। घनश्यामदास की कोठी खूब सजाई गई है। घनश्याम अपने कमरे में बैठे एक पुस्तक पढ रहे है। इतने में एक दासी ने आकर कहा, "बाबू भीतर चलो।" घनश्याम भीतर गए। माता ने उन्हे एक आसन पर बिठाया और उनकी भगिनी सरस्वती ने उनके तिलक लगाकर राखी बांधी। घनश्याम ने दा अशर्फियां उसके हाथ में धर दी और मुस्कराकर बोले, "क्या पैसे भी देने होंगे ?"

सरस्वती ने हंसकर कहा, "नहीं भैया, ये अशर्फियां पैसों से अच्छी हैं। इनसे बहुत-से पैसे आएंगे।"

आचार्य चतुरसेन

श्री चतुरसेन जी का जन्म १८८१ ई० में हुआ था। आचार्य चतुरसेन यशस्वी साहित्यकार के साथ-साथ आयुर्वेद के भी विद्वान् थे। चिकित्सा और साहित्य-सृजन उनके जीवन में साथ-साथ चलते रहे।

आचार्य जी रस-सिद्ध कथाकार थे। उनकी रचनाओं में अद्भुत प्रवाह, वर्णन में सजीवता और भाषा-शैली में प्रसाद गुण के दर्शन होते हैं।

आचार्य जी ने इतिहास और संस्कृति का विशेष अध्ययन किया था।

आचार्य जी की प्रतिभा निराली थी। साहित्य की कोई भी विधा ऐसी न होगी, जिसपर उन्होंने लिखा न हो। कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, गद्यकाव्य, आलोचना, वे सभी विषयों के समर्थ सर्जक थे।

आचार्यजी जितना सम्भवत हिन्दी के किसी अन्य लेखक ने नही लिखा है। सौ से भी कुछ ऊपर उनकी कृतियां प्रकाशित हो चुकी है। वे जीवन के अन्तिम दिनों तक लेखन-कार्य में प्रवृत्त रहे।

४

खूनी

उसका नाम मत पूछिए। आज दस वर्ष से उस नाम को हृदय से और उस सूरत को आंखो से दूर करने को पागल हुआ फिरता हूं। पर वह नाम और सूरत सदा मेरे साथ है। मै डरता हूं वह निडर है, मैं रोता हू, वह हंसता है, मै मर जाऊगा, वह अमर है।

मेरी उसकी कभी की जान-पहचान न थी। दिल्ली में हमारी गुप्त सभा थी, दल के सब आदमी आए थे, वह भी आया था। मेरा उसकी ओर कुछ ध्यान न था, वह पास ही खडा एक कुत्ते (पिल्ले) से किलोल कर रहा था। हमारे दल के नायक ने मेरे पास आकर सहज-गम्भीर स्वर में धीरे से कहा, "इस युवक को अच्छी तरह पहचान लो, इससे तुम्हारा काम पड़ेगा।"

नायक चले गए और मैं युवक की तरफ झुका। मैंने समझा, शायद नायक हम लोगों को कोई एक काम सुपुर्द करेगा।

मैंने युवक से हसकर कहा, "कैसा प्यारा जानवर है!"

युवक ने कच्चे दूध के समान स्वच्छ आंखें मेरे मुख पर डालकर कहा, "काश! मैं इसका सहोदर भाई होता।" मैं ठठाकर हंस पड़ा। वह मुस्कराकर रह गया। कुछ बातें हुई! उसी दिन वह मेरा मित्र बन गया!

दिन पर दिन व्यतीत हुए। अछूते प्यार की धाराएं दोनों हृदयों में उमड़कर एक धार हो गई, सरल अकपट व्यवहार पर दोनों मुग्ध हो गए। वह मुझे अपने गाव में ले गया, किसी तरह न माना। गांव के

किनारे एक स्वच्छ अट्टालिका थी। वह गांव के जमींदार का लड़का था—इकलौता बेटा था, हृदय और सूरत का एक-सा। उसकी मां ने दो दिन में ही मुझे 'बेटा' कहना शुरू किया। अपने होश के दिनों में मैंने वहां सात दिन माता का स्नेह पाया फिर चला आया। फिर गया और और आया। अब तो बिना उसके मन न लगता था। दोनों के प्राण दोनों मे अटक रहे थे। एक दिन उन्मत्त प्रेम के आवेश में उसने कहा था, किसी अघट घटना से जो हम दोनों में से, एक स्त्री बन जाए, तो तुमसे ब्याह ही कर लूं।"

नायक से कई बार पूछा, "क्यों तुमने मुझे उससे मित्रता करने को कहा ?" वे सदा यही कहते, "समय पर जानोगे। गुप्त सभा की भयकर गम्भीरता सब लोग नही जान सकते।" नायक मूर्तिमान भयंकर गम्भीर थे।

उस दिन भोजन के बाद उसका पत्र मिला। वह मेरी पाकेट में अब भी धरा है। पर किसी को दिखाऊंगा नहीं। उसे देखकर सांस सुख से लेता हूं, आसू बहाकर हलका हो जाता हूं। किसी पुराने रोगी को जैसे दवा खुराक बन जाती है, मेरी वेदना की भी यह चिट्ठी खुराक बन गई है।

चिट्ठी पढ़ भी न पाया था, नायक ने बुलाया। मैं सामने सरल स्वभाव खड़ा हो गया। बारहो प्रधान हाजिर थे। सन्नाटा भीषण सत्य की तस्वीर खींच रहा था। एक ही मिनट मे मैं गम्भीर और दृढ़ हो गया। नायक की मर्मभेदिनी दृष्टि मेरे नेत्रो मे गड़ गई, जैसे तप्त लोहे के तीर आख में घुस गए हों। मै पलक मारना भूल गया, मानो नेत्रों मे आग लग गई हो। पांच मिनट बीत गए। नायक ने गम्भीर वाणी से कहा, "सावधान ! क्या तुम तैयार हो ?"

मैं सचमुच तैयार था। मैं चौंका नहीं। आखिर मैं उसी सभा का परीक्षार्थी सभ्य था। मैंने नियमानुसार सिर झुका लिया। गीता की रक्तवर्ण रेशमी पोथी धीरे से मेज़ पर रख दी गई। नियमपूर्वक मैंने दोनों

हाथों से उठाकर सिर चढ़ा ली।

नायक ने मेरे हाथ से पुस्तक ले ली। क्षण-भर सन्नाटा रहा। नायक ने एकदम उसका नाम लिया और क्षण-भर में छ नली पिस्तौल मेज़ पर रख दी।

वह छ. शब्दों का नाम उस पिस्तौल की छओं गोलियों की तरह मस्तक मे घुस गया। पर मैं कम्पित नहीं हुआ। प्रश्न करने और कारण पूछने का निषेध था। नियमपूर्वक मैंने पिस्तौल उठाकर छाती पर रखी और स्थान मे हटा।

तत्क्षण मैंने यात्रा की। वह स्टेशन पर हाजिर था। अपने पत्र और मेरे प्रेम-पत्र पर इतना भरोसा उसे था, देखते ही लिपट गया। घर गए, चार दिन रहे। वह क्या करता है, क्या कहता है, मैं देख-सुन नहीं सकता था। शरीर सुन्न हो गया था, आत्मा दृढ़ थी, हृदय धड़क रहा था, पर विचार स्थिर थे।

चौथे दिन प्रातःकाल जलपान करके हम स्टेशन चले। तांगा नहीं लिया, जगल में घूमने जाने का विचार था। काव्यों की बढ़कर आलोचना होती चलती थी। उस मस्ती मे वह मेरे मन की उद्विग्नता भी न देख सका। धूप और खिली। पसीने बह चले। मैंने कहा, "चलो कहीं छांह में बैठें।" घना कुज सामने था, वहीं गए। बैठते ही जेब से दो अमरूद निकालकर उसने कहा, "सिर्फ दो ही पके थे। घर के बगीचे के हैं। यहीं बैठकर खाने के लिए लाया हूं। एक तुम्हारा, एक मेरा।"

मैंने चुपचाप अमरूद लिया और खाया। एकाएक मैं उठ खड़ा हुआ। वह आधा अमरूद खा चुका था, उसका ध्यान उसके स्वाद में था। मैंने धीरे से पिस्तौल निकाली, घोड़ा चढ़ाया और अकम्पित स्वर मे उसका नाम लेकर कहा, "अमरूद फेंक दो और भगवान का नाम लो, मैं तुम्हें गोली मारता हूं।"

उसे विश्वास न हुआ। उसने कहा, "बहुत ठीक, पर इसे खा तो लेने दो!" मेरा धैर्य छूट रहा था। मैंने दबे कंठ से कहा, "अच्छा खा

लो।" खाकर वह खड़ा हो गया, सीधा तनकर। उसने कहा, "अच्छा, मारो गोली!" मैंने कहा, "हंसी मत समझो। मैं तुम्हे गोली ही मारता हू, भगवान का नाम लो।" उसने हंसी मे ही भगवान का नाम लिया और फिर वह नकली गम्भीरता से खड़ा हो गया। मैंने एक हाथ से अपनी छाती दबाकर कहा, "ईश्वर की सौगन्ध! हंसी मत समझो, मैं तुम्हें गोली मारता हू!"

मेरी आखों में वही कच्चे दूध के समान स्वच्छ आखे मिलाकर उसने कहा—"मारो!"

एक क्षण-भर भी विलम्ब करने से मैं कर्तव्यविमूढ हो जाता, पल-पल में साहस डूब रहा था, दनादन दो शब्द गूंज उठे। वह कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ा। दोनों गोलियां छाती को पार कर गई।

मैं भागा नही। भय से इधर-उधर मैंने देखा भी नही। रोया भी नहीं। मैंने उसे गोद मे उठाया। मुह की धूल पोंछी, रक्त साफ किया। आंखो में इतनी ही देर मे कुछ का कुछ हो गया था। देर तक के लिए बैठा रहा, जैसे मा सोते बच्चे को—जगने के भय से—लिए, निश्चल बैठी रहती है।

मैं उठा। ईंधन चुना। चिता बनाई और जलाई। अन्त तक बैठा रहा।

*　　*

बारहो प्रधान हाज़िर थे। उसी स्थान पर जाकर मैं खडा हुआ। नायक ने खड़े होकर नीरव हाथ बढ़ाकर पिस्तौल मागी। पिस्तौल दे दी। कार्य-सिद्धि का संकेत सम्पूर्ण हुआ। नायक ने खड़े होकर वैसे ही गम्भीर स्वर में कहा, "तेरहवें प्रधान की कुर्सी हम तुम्हें देते है।"

मैंने कहा, "तेरहवें प्रधान की हैसियत से मैं पूछता हूं कि उसका अपराध मुझे बताया जाए।"

नायक ने नम्रतापूर्वक जवाब दिया, "वह हमारे हत्या-सम्बन्धी षड्यन्त्रों का विरोधी था, हमें उसपर सरकारी मुखबिर होने का सन्देह था।"

मैं कुछ कहने योग्य न रहा !

नायक ने वैसे ही गम्भीरता से कहा, "नवीन प्रधान की हैसियत से तुम यथेच्छ (एक) पुरस्कार मांग सकते हो।"

अब मैं रो उठा। मैंने कहा, "मुझे मेरे वचन फेर दो, मुझे मेरी प्रतिज्ञाओं से मुक्त करो, मैं उसी के समुदाय का हूं। तुम लोगों में नंगी छाती पर तलवार के घाव खाने की मरदानगी न हो, तो अपने को देश-भक्त कहने में सकोच करो। तुम्हारी इन कायर हत्याओं को मैं घृणा करता हूं। मैं हत्यारों का साथी, सलाही और मित्र नहीं बन सकता, तुम तेरहवी कुर्सी जला दो !"

नायक को क्रोध न आया। बारहों प्रधान पत्थर की मूर्ति की तरह बैठे रहे। नायक ने उसी गम्भीर स्वर मे कहा, "तुम्हारे इन शब्दों की सजा मौत है, पर नियमानुसार तुम्हे क्षमा पुरस्कार मे दी जा सकती है।"

मैं उठकर चला गया।

दस वर्ष व्यतीत हो गए। देश-भर में घूमा, कहीं ठहरा नहीं, भूख-प्यास, विश्राम और शान्ति की इच्छा ही मर गई दीखती है। बस, अब वही पत्र मेरे नेत्र और हृदय की रोशनी है। मेरा वारन्ट निकला था। मन में आई, फांसी पर जा चढ़ूं, फिर सोचा, 'मरते ही उस सज्जन को भूल जाऊंगा। मरने में अब क्या स्वाद है ? जीना चाहता हूं। किसी तरह जीते रहने की लालसा मन में बसी है, जीते जी ही मैं उसे देख और याद कर सकता हूं !'

प्रेमचन्द

श्री प्रेमचन्दजी का जन्म सन् १८६० ई० में वाराणसी जिले के मढ़वा लमही नामक गाँव में हुआ था। आपके पिता डाकखाने में मुंशी थे। मैट्रिक तक आपकी शिक्षा स्कूल में हुई। आर्थिक स्थिति से विवश होकर मैट्रिक के बाद नौकरी करनी पड़ी, किन्तु आपने अध्ययन बन्द नहीं किया। सरकारी नौकरी में ही आपने बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। असहयोग-आन्दोलन के समय आपने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र देकर स्वतन्त्र लेखन-व्यवसाय को जीविका का सहारा बनाया।

प्रेमचन्द ने पहले उर्दू मे धनपतराय नाम से कहानी लिखना प्रारम्भ किया था। कुछ समय बाद ही हिन्दी भाषा के प्रति प्रेम के कारण हिन्दी को आपने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। प्रेमचन्दजी हिन्दी कथा-साहित्य के युगान्तरकारी लेखक हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों मे पददलित, शोषित और अपमानित मजदूरों तथा किसानों का सजीव चित्रण किया। मध्यवर्गीय भारतीय समाज का सच्चा चित्र आपके साहित्य में ही मिलता है। प्रेम, सहानुभूति और सेवा को आप जीवन का आधार मान कर लिखते थे।

प्रेमचन्द की शैली अत्यधिक रोचक, आकर्षक, सहज और सरल है। आपने उस भाषा को अपनी कहानी का माध्यम बनाया है जो दैनिक जीवन में प्रयुक्त होती है।

अक्तूबर, सन् १९३६ में ५६ वर्ष की आयु में आपका देहान्त हुआ।

/

५

कफ़न

१

झोंपड़े के द्वार पर बाप और बेटा दोनों एक बुझे हुए अलाव के सामने चुपचाप बैठे हुए है और अन्दर बेटे की जवान बीवी बुधिया प्रसव-वेदना से पछाड़ खा रही थी। रह-रह कर उसके मुँह से ऐसी दिल हिला देने वाली आवाज़ निकलती थी कि दोनों कलेजा थाम लेते थे। जाड़ों की रात थी, प्रकृति सन्नाटे में डूबी हुई। सारा गाँव अन्धकार मे लय हो गया था।

घीसू ने कहा—"मालूम होता है, बचेगी नहीं। सारा दिन दौड़ते हो गया, जा, देख तो आ।"

माधव चिढ़कर बोला—"मरना ही है तो जल्दी मर क्यों नहीं जाती! देखकर क्या करूँ?"

"तू बड़ा बेदर्द है बे! साल भर जिसके साथ सुख-चैन से रहा, उसी के साथ इतनी बेवफाई!"

"तो मुझसे तो उसका तड़पना और हाथ-पाँव पटकना नहीं देखा जाता।"

चमारों का कुनबा था और सारे गाँव में बदनाम। घीसू एक दिन काम करता तो तीन दिन आराम। माधव इतना कामचोर था कि आध घन्टे काम करता तो घण्टे भर चिलम पीता। इसलिए उन्हें कहीं मजदूरी नहीं मिलती थी। घर में मुट्ठी भर भी अनाज मौजूद हो, तो उनके लिए काम करने की कसम थी। जब दो-चार फाके हो जाते, तो घीसू पेड़ पर चढ़कर लकड़ियाँ तोड़ लाता और माधव बाज़ार में बेच आता। और

जब तक वह पैसे रहते, दोनों इधर-उधर मारे-मारे फिरते। जब फाके की नौबत आ जाती, तो फिर लकड़ियाँ तोड़ते या मजदूरी तलाश करते। गाँव में काम की कमी न थी। किसानों का गाँव था, मेहनती आदमी के लिए पचास काम थे। मगर इन दोनों को लोग उसी वक्त बुलाते, जब दो आदमियों से एक का काम पाकर भी सन्तोष कर लेने के सिवा और कोई चारा न होता। अगर दोनों साधु होते, तो उन्हें सन्तोष और धैर्य के लिए संयम और नियम की बिलकुल जरूरत न होती। यह तो इनकी प्रकृति थी। विचित्र जीवन था उनका! घर में मिट्टी के दो-चार बर्तनों के सिवा कोई सम्पत्ति नहीं। फटे चीथड़ों से अपनी नग्नता को ढाँके हुए जिये जाते थे। संसार की चिन्ताओं से मुक्त! कर्ज से लदे हुए। गालियाँ भी खाते, मार भी खाते, मगर कोई भी गम नहीं। दीन इतने कि वसूली की बिलकुल आशा न रहने पर भी लोग इन्हें कुछ-न-कुछ कर्ज दे देते थे। मटर, आलू की फसल में दूसरों के खेतों में मटर या आलू उखाड़ लाते और भून-भानकर खा लेते या दस-पाँच ऊख उखाड़ लाते और रात को चूसते। घीसू ने इसी आकाश-वृत्ति से साठ साल की उम्र काट दी और माधव भी सपूत बेटे की तरह बाप ही के पद-चिह्नों पर चल रहा था, बल्कि उसका नाम और भी उजागर कर रहा था। इस वक्त भी दोनों अलाव के सामने बैठकर आलू भून रहे थे, जो कि किसी के खेत से खोद लाये थे। घीसू की स्त्री का तो बहुत दिन हुए, देहान्त हो गया था। माधव का ब्याह पिछले साल हुआ था। जब से यह औरत आई थी उसने इस खानदान में व्यवस्था की नींव डाली थी। पिसाई करके या घास छीलकर वह सेर भर आटे का इन्तजाम कर लेती थी और इन दोनों बेगैरतों का दोजख भरती रहती थी। जब से वह आई, यह दोनों और भी आलसी और आरामतलब हो गये थे। बल्कि कुछ अकड़ने भी लगे थे। कोई कार्य करने को बुलाता, तो निर्व्याज-भाव से दुगुनी मजदूरी माँगते। वही औरत आज प्रसव-वेदना से मर रही थी और ये दोनों शायद इसी इन्तजार में थे कि वह मर जाय, तो आराम से सोयें।

घीसू ने आलू निकालकर छीलते हुए कहा—"जाकर देख तो, व दशा है उसकी ? चुड़ैल का फिसाद होगा, और क्या ? यहाँ तो ओ भी एक रुपया माँगता है !"

माधव को भय था कि वह कोठरी में गया, तो घीसू आलुओं का ब साफ कर देगा । बोला—"मुझे वहाँ जाते डर लगता है ।"

"डर किस बात का है, मैं तो यहाँ हूँ ही !"

"तो तुम्हीं जाकर देखो न ?"

"मेरी औरत जब मरी थी, तो मैं तीन दिन तक उसके पास से हि तक नहीं था ! और फिर मुझसे लजायेगी कि नहीं ? जिसका क मुँह नहीं देखा, आज उसका उघड़ा हुआ बदन देखूँ ! उसे तन की सुध भी तो न होगी ? मुझे देख लेगी तो खुलकर हाथ-पाँव भी न पटक सकेगी !"

"मैं सोचता हूँ, कोई बाल-बच्चा हो गया तो क्या होगा ? सोंठ, गुड़, तेल कुछ भी तो नहीं घर में !"

"सब कुछ आ जायगा । भगवान दें तो जो लोग अभी एक पैसा नहीं दे रहे हैं, वे ही कल बुलाकर रुपये देंगे । मेरे नौ लड़के हुए, घर मे कभी कुछ न था, मगर भगवान ने किसी तरह बेड़ा पार ही लगाया ।"

जिस समाज में रात-दिन मेहनत करनेवालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज़्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी । हम तो कहेंगे, घीसू किसानों से कहीं ज़्यादा विचारवान् था, जो किसानों के विचारशून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठकबाज़ों की कुत्सित मण्डली में जा मिला था । हाँ, उसमें यह शक्ति न थी कि बैठकबाजों के नियम और नीति का पालन करता । इसलिए जहाँ उसकी मण्डली के और लोग गाँव के सरग़ना और मुखिया बने हुए थे, उस पर सारा गाँव उँगली उठाता था । फिर भी उसे यह तसकीन तो थी ही कि अगर वह फटेहाल है तो कम-से-कम उसे किसानों की-सी जी-तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती ।

जब [इ]सकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग बेजा फ़ायदा तो नहीं नौब[त] ।

[दो]नों आलू निकाल-निकालकर जलते-जलते खाने लगे । कल से [कुछ न]हीं खाया था । इतना सब्र न था कि उन्हें ठण्डा हो जाने दें । कई [बार] दोनों की जबानें जल गई । छिल जाने पर आलू का बाहरी हिस्सा [ब]हुत ज्यादा गर्म न मालूम होता, लेकिन दाँतों के तले पड़ते ही अन्दर [का हि]स्सा जबान और हलक और तालू को जला देता था और उस अंगारे [को मुँ]ह में रखने से ज्यादा खैरियत इसी में थी कि वह अन्दर पहुँच जाय । [वहाँ] उसे ठण्डा करने के लिए काफी सामान थे । इसलिए दोनों जल्द-[जल्दी] निगल जाते । हालाँकि इस कोशिश में उनकी आँखों से आँसू निकल आते ।

घीसू को उस वक़्त ठाकुर की बारात याद आई, जिसमे बीस साल पहले वह गया था । उस दावत में उसे तृप्ति मिली थी, वह उसके जीवन में, एक याद रखने लायक बात थी और आज भी उसकी याद ताजा थी ! बोला--"वह भोज नहीं भूलता । जब से फिर उस तरह का खाना और भर पेट नहीं मिला । लड़कीवालों ने सबको भर पेट पूरियाँ खिलाई थीं, सबको ! छोटे-बड़े सबने पूरियाँ खा ली और असली घी की ! चटनी, रायता, तीन तरह के सूखे साग, एक रसेदार तरकारी, दही, चटनी, मिठाई । अब क्या बताऊँ कि उस भोज मे क्या स्वाद मिला । कोई रोक-टोक नहीं थी । जो चीज़ चाहो माँगो और जितना चाहो खाओ । लोगों ने ऐसा खाया, ऐसा खाया, किसी से पानी न पिया गया । मगर परोसने वाले हैं कि पत्तल में गर्म-गर्म गोल-गोल सुवासित कचौरियाँ डाल देते है । मना करते है कि नहीं चाहिए, पत्तल पर हाथ से रोके हुए हैं, मगर वह है कि दिए जाते हैं और जब मुँह धो लिया, तो पान-इलायची भी मिली, मगर मुझे पान लेने की कहाँ सुध थी ? खड़ा न हुआ जाता था ? चटपट जाकर अपने कम्बल पर लेट गया । ऐसा दिल-दरियाव था वह ठाकुर ।"

माधव ने इन पदार्थों का मन-ही-मन मजा लेते हुए कहा—"अब हमे

कोई ऐसा भोज नही खिलाता।"

"अब कोई क्या खिलायेगा ? वह जमाना दूसरा था। अब तो सबको किफायत सूझती है। शादी-ब्याह मे मत खर्च करो, क्रिया-कर्म में मत खर्च करो ! पूछो, गरीबों का माल बटोर-बटोर कर कहाँ रखोगे ! बटोरने मे तो कमी नही है। हाँ, खर्च में किफायत सूझती है।"

"तुमने एक बीस पूरियाँ खायी होगी ?"

"बीस से ज्यादा खायी थी ?"

"मैं पचास खा जाता ?"

"पचास से कम मैंने भी न खायी होगी। अच्छा पट्ठा था। तू तो मेरा आधा भी नहीं है।"

आलू खाकर दोनों ने पानी पिया और वही अलाव के सामने अपनी धोतियाँ ओढ़कर, पाँव पेट मे डाले सो रहे। जैसे दो बड़े-बड़े अजगर, गेंडुलियाँ मारे पड़े हो।

और बुधिया अभी तक कराह रही थी।

२

सवेरे माधव ने कोठरी मे जाकर देखा, तो उसकी स्त्री ठण्डी हो गई थी। उसके मुंह पर मक्खियाँ भिनक रही थी। पथराई हुई आँखें ऊपर टँगी हुई थीं। सारी देह धूल मे लथपथ हो रही थी। उसके पेट में बच्चा मर गया था।

माधव भागा हुआ घीसू के पास आया। फिर दोनों ज़ोर-जोर से हाय-हाय करने और छाती पीटने लगे। पडोसवालों ने यह रोना-धोना सुना तो दौड़े हुए आये और पुरानी मर्यादा के अनुसार इन अभागों को समझाने लगे।

मगर ज़्यादा रोने-पीटने का अवसर न था। कफ़न की और लकड़ी की फ़िक्र करनी थी। घर मे तो पैसा इस तरह गायब था, जैसे चील के घोंसले में मांस।

बाप-बेटे रोते हुए गाँव के जमींदार के पास गये। वह इन दोनों की

सूरत से नफ़रत करते थे । कई बार इन्हें अपने हाथो पीट चुके थे। चोरी करने के लिए, वादे पर काम पर न आने के लिए। पूछा—"क्या है बे घिसुआ, रोता क्यों है ? अब तो तू कही दिखाई भी नहीं देता ! मालूम होता है, इस गाँव मे रहा नहीं चाहता।"

घीसू ने ज़मीन पर सिर रखकर आँखों में आँसू भरे हुए कहा, "सरकार ! बड़ी विपत्ति मे हूँ । माधव की घरवाली रात को गुजर गई। रात भर तड़पती रही सरकार ! हम दोनों उसके सिरहाने बैठे रहे । दवा-दारू जो कुछ हो सका, सब कुछ किया, मुदा वह हमे दगा दे गई। अब कोई एक रोटी देने वाला भी न रहा मालिक ! तबाह हो गए। घर उजड गया। आपका गुलाम हूँ । अब आपके सिवा कौन उसकी मिट्टी पार लगायेगा। हमारे हाथ मे तो जो कुछ था, वह सब तो दवा-दारू में उठ गया। सरकार ही की दया होगी, तो उसकी मिट्टी उठेगी। आपके सिवा किसके द्वार पर जाऊँ ?"

ज़मींदार साहब दयालु थ । मगर घीसू पर दया करना काले कम्बल पर रंग चढ़ाना था। जी में तो आया, कह दें चल, दूर हो यहाँ से ! यों तो बुलाने से भी नही आता, आज जब गरज पडी, तो आकर खुशामद कर रहा है । हरामखोर कहीं का, बदमाश ! लेकिन यह क्रोध या दण्ड का अवसर न था। जी में कुढ़ते हुए दो रुपये निकाल कर फेंक दिये। मगर सान्त्वना का एक भी शब्द मुँह से न निकला। उसकी तरफ ताका भी नहीं। जैसे सिर का बोझ उतारा हो।

जब ज़मींदार साहब ने दो रुपये दिये, तो गाँव के बनिये-महाजनो को इनकार का साहस कैसे होता ? घीसू ज़मींदार के नाम का ढिंढोरा भी पीटना खूब जानता था। किसी ने दो आने दिये, किसी ने चार आने। एक घन्टे में घीसू के पास पाँच रुपये की अच्छी रकम जमा हो गई। कहीं से नाज मिल गया, कहीं से लकड़ी। और दोपहर को घीसू और माधव बाज़ार से कफ़न लाने चले। इधर लोग बाँस-वाँस काटने लगे।

गाँव की नर्म दिल स्त्रियाँ आ-आकर लाश को देखती थी और उसकी

बेकसी पर दो बूंद आँसू गिराकर चली जाती थीं।

३

बाज़ार मे पहुंच कर घीसू बोला—"लकडी तो उसे जलाने भर को मिल गई है, क्यों माधव !"

माधव बोला—"हाँ, लकड़ी तो बहुत है, अब कफ़न चाहिए।"

"तो चलो, कोई हलका-सा कफ़न ले लें।"

"हाँ और क्या ! लाश उठते-उठते रात हो जायगी। रात को कफ़न कौन देखता है ?"

"कैसा बुरा रिवाज है कि जीते जी तन ढ़ाँकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न चाहिए।"

"कफ़न लाश के साथ जल ही तो जाता है !"

"और क्या रखा रहता है ? यही पाँच रुपये पहले मिलते, तो कुछ दवा-दारू कर लेते।"

दोनों एक दूसरे के मन की बात ताड़ रहे थे। बाजार में इधर-उधर घूमते रहे। कभी इस बजाज की दुकान पर गये कभी उस दुकान पर। तरह-तरह के कपड़े, रेशमी और सूती देखे, मगर कुछ जँचा नहीं। यहाँ तक कि शाम हो गई। तब दोनों न जाने किस दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने आ पहुंचे और जैसे किसी पूर्व निश्चत योजना से अन्दर चले गये। वहाँ जरा देर तक दोनों असमंजस मे खडे रहे। फिर घीसू ने गद्दी के सामने जाकर कहा—"साहुजी, एक बोतल हमे भी देना।"

इसके बाद कुछ चिखौना आया, तली हुई मछलियाँ आईं और दोनों बरामदे में बैठकर शान्तिपूर्वक पीने लगे।

कई कुज्जियाँ ताबड़तोड़ पीने के बाद दोनों सरूर में आ गए।

घीसू बोला—"कफ़न लगाने से क्या मिलता ? आखिर जल ही तो जाता। कुछ बहू के साथ तो न जाता।"

माधव आसमान की तरफ देखकर बोला, मानो देवताओं को अपनी निष्पापता का साक्षी बना रहा हो—"दुनिया का दस्तूर है, नहीं लोग

बामनों को हजारों रुपए क्यो दे देते है। कौन देखता है, परलोक में मिलता है या नहीं !"

"बड़े आदमियों के पास धन है। चाहे फूंकें ! हमारे पास फूंकने को क्या है ?"

"लेकिन लोगों को जवाब क्या दोगे ? लोग पूछेंगे नहीं, कफ़न कहाँ है ?"

घीसू हँसा—"अबे कह देंगे कि रुपये कमर से खिसक गए। बहुत ढूंढ़ा, मिले नहीं। लोगों को विश्वास तो न आएगा, लेकिन फिर वही रुपए देंगे।"

माधव भी हँसा, इस अनपेक्षित सौभाग्य पर बोला—"बड़ी अच्छी थी बेचारी ! मरी तो खूब खिला-पिलाकर !"

आधी बोतल से ज़्यादा उड गई। घीसू ने दो सेर पूरियाँ मँगाईं। चटनी, अचार, कलेजियाँ। शराबखाने के सामने ही दुकान थी। माधव लपककर दो पत्तलों में सारे सामान ले आया। पूरा डेढ़ रुपया और खर्च हो गया। सिर्फ़ थोड़े से पैसे और बच रहे।

दोनों इस वक़्त शान से बैठे हुए पूरियाँ खा रहे थे, जैसे जंगल में कोई शेर अपना शिकार उड़ा रहा हो। न जवाबदेही का खौफ़ था, न बदनामी की फ़िक्र। इन भावनाओं को उन्होंने बहुत पहले ही जीत लिया था।

घीसू दार्शनिक भाव से बोला—"हमारी आत्मा प्रसन्न हो रही है, तो क्या उसे पुन्न न होगा ?"

माधव ने श्रद्धा से सिर झुकाकर तसदीक की—"ज़रूर से ज़रूर होगा। भगवान, तुम अन्तर्यामी हो। उसे बैकुण्ठ ले जाना। हम दोनों हृदय से आशीर्वाद दे रहे है। आज जो भोजन मिला, वह कभी उम्र भर न मिला था।"

एक क्षण के बाद माधव के मन में एक शंका जागी। बोला—'क्यों दादा, हम लोग भी तो एक-न-एक दिन वहाँ जायेंगे ही।"

घीसू ने इस भोले-भाले सवाल का कुछ उत्तर न दिया। वह परलोक की बातें सोचकर इस आनन्द में बाधा न डालना चाहता था।

"जो वहाँ वह हम लोगों से पूछे कि तुमने हमें कफ़न क्यों नहीं दिया तो

क्या कहोगे ?"

"कहेंगे तुम्हारा सिर !"

"पूछेगी तो जरूर !"

"तू कैसे जानता है कि उसे कफ़न न मिलेगा ? तू मुझे ऐसा गधा समझता है ? साठ साल क्या दुनिया में घास खोदता रहा हूँ ! उसको कफ़न मिलेगा और इससे बहुत अच्छा मिलेगा !"

माधव को विश्वास न आया। बोला—"कौन देगा ? रुपये तो तुमने चट कर दिये। वह तो मुझसे पूछेगी। उसकी माँग में सेंदूर तो मैंने डाला था।"

घीसू गर्म होकर बोला—"मैं कहता हूँ, उसे कफ़न मिलेगा ! तू मानता क्यों नहीं ?"

"कौन देगा, बताते क्यों नही ?"

"वही लोग देंगे, जिन्होंने कि अबकी दिया। हाँ, अबकी रुपये हमारे हाथ न आयेंगे।"

ज्यों-ज्यों अँधेरा बढ़ता था और सितारों की चमक तेज होती थी, मधुशाला की रौनक भी बढ़ती जाती थी। कोई गाता था, कोई डींग मारता था, कोई अपने संगी के गले लिपटा जाता था। कोई अपने दोस्त के मुँह में कुल्हड़ लगाये देता था।

वहाँ के वातावरण में सरूर था, हवा में नशा। कितने तो यहाँ आकर एक चुल्लू में मस्त हो जाते थे। शराब से ज्यादा यहाँ की हवा उनपर नशा करती थी। जीवन की बाधाएँ यहाँ खींच लाती जाती थी और कुछ देर के लिए वे यह भूल जाते थे कि वे जीते है या मरते है ! या न जीते है, न मरते हैं !

और यह दोनों बाप-बेटा अब भी कुज़े ले-लेकर चुसकियाँ ले रहे थे। सबकी निगाहे इनकी ओर जमी हुई थी। दोनो कितने भाग्य के बली है। पूरी बोतल बीच मे है।

भरपेट खाकर माधव ने बची हुई पूरियों का पत्तल उठाकर एक भिखारी को दे दिया, जो खड़ा इनकी ओर भूखी आँखों से देख रहा था। और 'देने'

के गौरव आनन्द और उल्लास का उसने अपने जीवन मे पहली बार अनुभव किया।

घीसू ने कहा—"ले जा खूब खा और आशीर्वाद दे! जिसकी कमाई है, वह तो मर गई। मगर तेरा आशीर्वाद उसे जरूर पहुचेगा। रोयें-रोयें से आशीर्वाद दे; बड़ी गाढ़ी कमाई के पैसे है!"

माधव ने फिर आसमान की तरफ देखकर कहा—"वह बैकुण्ठ में जायगी दादा, वह बैकुण्ठ की रानी बनेगी।"

घीसू खडा हो गया और जैसे उल्लास की लहरो मे तैरता हुआ बोला—"हां बेटा, बैकुण्ठ में जायगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नही। मरते-मरते हमारी जिन्दगी की सबसे बडी लालसा पूरी कर गई। वह न बैकुण्ठ मे जायगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जायँगे, जो गरीबों को दोनों हाथो से लूटते है और अपने पाप को धोने के लिए गगा में नहाते है और मन्दिरो मे जल चढ़ाते है!"

श्रद्धालुता का यह रंग तुरन्त ही बदल गया। अस्थिरता नशे की खासियत है। दुःख और निराशा का दौरा हुआ।

माधव बोला—"मगर दादा, बेचारी ने जिन्दगी मे बड़ा दुख भोगा। कितना दुख झेलकर मरी।"

वह आँखों पर हाथ रखकर रोने लगा, चीखें मार-मार कर।

घीसू ने समझाया—"क्यों रोता है बेटा, खुश हो कि वह माया-जाल से मुक्त हो गई। जंजाल से छूट गई। बडी भाग्यवान थी, जो इतनी जल्द माया-मोह के बन्धन तोड़ दिये।"

और दोनो खड़े होकर गाने लगे—

"ठगिनी क्यों नैना झमकावै! ठगिनी!"

पियक्कड़ों की आँखे इनकी ओर लगी हुई थी और यह दोनों अपने दिल मे मस्त गाये जाते थे। फिर दोनों नाचने लगे। उछले भी कूदे भी। गिरे भी, मटके भी। भाव भी बनाये अभिनय भी किये और आखिर नशे

सुदर्शन

श्री सुदर्शन का जन्म सन् १८९६ ई० में स्यालकोट (पश्चिमी पंजाब) में हुआ। आपको बचपन से ही कहानी पढ़ने और लिखने का शौक था। आपकी सबसे प्रथम कहानी उर्दू में लिखी गई—प्रारम्भ में उर्दू ही आपकी अभिव्यक्ति का माध्यम रही, किन्तु बाद में आप हिन्दी में लिखने लगे। अभी तक आपकी शताधिक कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

सुदर्शनजी सीधी-सादी भाषा के पक्षपाती हैं। उनकी मान्यता है कि भाषा वह है जो एक हृदय से निकलकर दूसरे हृदय तक बिना किसी रोक-टोक पहुँच सके। किन्तु भाषा के स्वाभाविक अलंकरणों की आप उपेक्षा नहीं करते। प्रेमचन्द की शैली से आपका बहुत साम्य है। सुदर्शनजी की यह सबसे मुख्य विशेषता है कि वे उदात्त भावों से परिपूर्ण रचना पर ही बल देते हैं। मानसिक विकार उत्पन्न करने वाली रचना में आपका तनिक भी विश्वास नहीं है। प्रत्येक कहानी किसी उदात्त आदर्श पर प्रतिष्ठित है, फलतः पाठक का मन सदैव उच्च विचार की ओर दौड़ता है। आपका कहना है कि वही सच्चा साहित्य है जो संसार को ऊँचा उठाने में समर्थ है और ऊँचा वही साहित्य उठा सकता है जो हीन वासनाओं से रहित होगा।

सुदर्शनजी सम्प्रति बम्बई में सिनेमा के लिए कहानी-लेखन का कार्य करते हैं। आपने सिनेमा-जगत् को कई सुन्दर, सुरुचि-पूर्ण कहानियाँ प्रदान की हैं।

६

हार की जीत

माँ को अपने बेटे, साहूकार को अपने देनदार और किसान को अपने लहलहाते खेत देखकर जो आनन्द आता है, वही आनन्द बाबा भारती को अपना घोडा देखकर आता था। भगवत्-भजन से जो समय बचता, वह घोड़े को अर्पण हो जाता। यह घोड़ा बडा सुन्दर था, बड़ा बलवान्। इसके जोड का घोडा सारे इलाके मे न था। बाबा भारती उसे सुलतान कहकर पुकारते, अपने हाथ से खरहरा करते, खुद दाना खिलाते, और देख-देख कर प्रसन्न होते थे। ऐसी लगन, ऐसे प्यार, ऐसे स्नेह से कोई सच्चा प्रेमी अपने प्यारे को भी न चाहता होगा। उन्होने अपना सब कुछ छोड़ दिया था, रुपया, माल, असबाब, जमीन, यहाँ तक कि उन्हे नागरिक जीवन से भी घृणा थी। अब गाँव से बाहर एक छोटे-से मन्दिर में रहने और भगवान का भजन करते थे, परन्तु सुलतान से बिछुड़ने की वेदना उनके लिए असह्य थी। मैं इसके बिना नहीं रह सकूँगा, उन्हें ऐसी भ्रांति-सी हो गयी थी। वह उसकी चाल पर लट्टू थे। कहते, ऐसा चलता है, जैसे मोर घन-घटा को देखकर नाच रहा हो। [गाँवों के लोग इस प्रेम को देखकर चकित थे, कभी-कभी कनखियों मे इशारे भी करते थे; परन्तु बाबा भारती को इसकी परवा न थी। जब तक सध्या-समय सुलतान पर चढ़कर आठ-दस मील का चक्कर न लगा लेते, उन्हे चैन न आता?

खड्गसिंह इस इलाके का प्रसिद्ध डाकू था। लोग उसका नाम सुन कर काँपते थे। होते-होते सुलतान की कीर्ति उसके कानों तक भी पहुंची। उसका हृदय उसे देखने के लिए अधीर हो उठा। वह एक दिन दोपहर

के समय बाबा भारती के पास पहुचा और नमस्कार करके बैठ गया।

बाबा भारती ने पूछा--खड्गसिह, क्या हाल है ?

खड्गसिह ने सिर झुकाकर उत्तर दिया--आपकी दया है।

"कहो, इधर कैसे आ गए ?"

"सुलतान की चाह खीच लायी।"

"विचित्र जानवर है। देखोगे, तो प्रसन्न हो जावोगे।"

"मैंने भी बडी प्रशसा सुनी है।"

"उसकी चाल तुम्हारा मन मोह लेगी।"

"कहते है देखने मे भी बडा सुन्दर है।"

"क्या कहना। जो उसे एक बार देख लेता है, उसके हृदय पर उसकी छवि अकित हो जाती है।"

"बहुत दिनों से अभिलाषा थी, आज उपस्थित हो सका हूं।"

बाबा और खड्गसिह, दोनो अस्तबल मे पहुचे। बाबा ने घोडा दिखाया घमड से। खड्गसिह ने घोडा देखा आश्चर्य से। उसने सहस्रो घोडे देखे थे परन्तु ऐसा बाँका घोडा उसकी आँखों मे कभी न गुजरा था। सोचने लगा, भाग्य की बात है। ऐसा घोडा खड्गसिह के पास होना चाहिए था। इस साधु को ऐसी चीजो से क्या लाभ ? कुछ देर तक आश्चर्य से चुपचाप खडा रहा। इसके पश्चात् हृदय में हलचल होने लगी। बालकों की-सी अधीरता से बोला--परन्तु बाबाजी, इसकी चाल न देखी, तो क्या देखा ?

२

बाबाजी भी मनुष्य ही थे। अपनी वस्तु की प्रशसा दूसरे के मुख से सुनने के लिए उनका हृदय भी अधीर हो गया। घोडे को खोलकर बाहर लाये, और उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगे। एकाएक उचक कर सवार हो गए। घोडा वायु-वेग से उडने लगा। उसकी चाल देखकर, उसकी गति देखकर खड्गसिह के हृदय पर साँप लौट गया। वह डाकू था। और जो वस्तु उसे पसन्द आ जाय, उसपर अपना अधिकार समझता था। उसके पास बाहुबल था, और आदमी थे। जाते-जाते उसने कहा--बाबाजी, मैं

यह घोडा आपके पास न रहने दूंगा।

बाबा भारती डर गए। अब उन्हें रात को नींद न आती थी। सारी रात अस्तबल की रखवाली मे कटने लगी। प्रतिक्षण खड्गसिंह का भय लगा रहता; परन्तु कई मास बीत गये, और वह न आया। यहाँ तक कि बाबा भारती कुछ लापरवाह हो गये; और इस भय को स्वप्न के भय की नाईं मिथ्या समझने लगे।

संध्या का समय था। बाबा भारती सुलतान की पीठ पर सवार होकर घूमने जा रहे थे। इस समय उनकी आँखों में चमक थी, मुख पर प्रसन्नता। कभी घोड़े के शरीर को देखते, कभी रंग को, और मन में फूले न समाते थे।

सहसा एक ओर से आवाज आयी—ओ बाबा, इस कंगले की भी बात सुनते जाना।

आवाज मे करुणा थी। बाबा ने घोड़े को थाम लिया। देखा एक अपाहिज वृक्ष की छाया मे पडा कराह रहा है। बोले—क्यो, तुम्हे क्या कष्ट है ?

अपाहिज ने हाथ जोड़कर कहा—बाबा, मैं दुखिया हूं। मुझ पर दया करो। रामाँवाला यहाँ से तीन मील है; मुझे वहाँ जाना है। घोड़े पर चढा लो, परमात्मा भला करेगा।

"वहाँ तुम्हारा कौन है ?"

"दुर्गादत्त वैद्य का नाम आपने सुना होगा। मैं उनका सौतेला भाई हूं !"

बाबा भारती ने घोडे से उतर कर अपाहिज को घोड़े पर सवार किया, और स्वयं उसकी लगाम पकड़कर धीरे-धीरे चलने लगे।

सहसा उन्हे एक झटका-सा लगा, और लगाम हाथ से छूट गयी। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उन्होंने देखा कि अपाहिज घोड़े की पीठ पर तन कर बैठा, और घोड़े को दौड़ाये लिए जा रहा है। उनके मुख से भय, विस्मय और निराशा से मिली हुई चीख निकल गयी। यह अपाहिज खगड़सिंह डाकू था।

बाबा भारती कुछ देर तक चुप रहे, और इसके पश्चात् कुछ निश्चय

करके पूरे बल से चिल्लाकर बोले—जरा ठहर जाओ।

खड्गसिंह ने यह आवाज सुनकर घोड़ा रोक लिया, और उसकी गर्दन पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा—बाबाजी, यह घोड़ा अब न दूंगा।

"परन्तु एक बात सुनते जाओ।"

खड्गसिंह ठहर गया। बाबा भारती ने निकट जाकर उसकी ओर ऐसी आंखों से देखा, जैसे बकरा कसाई की ओर देखता है, और कहा—यह घोड़ा तुम्हारा हो चुका। मैं तुमसे इसे वापस करने के लिए न कहूंगा। परन्तु खड्गसिंह, केवल एक प्रार्थना करता हूं, उसे अस्वीकार न करना, नहीं तो मेरा दिल टूट जायगा।

"बाबाजी, आज्ञा कीजिए। मैं आपका दास हूं; केवल यह घोड़ा न दूंगा।"

"अब घोड़े का नाम न लो, मैं तुमसे इसके विषय में कुछ न कहूंगा। मेरी प्रार्थना केवल यह है कि इस घटना को किसी के सामने प्रकट न करना।"

खड्गसिंह का मुंह आश्चर्य से खुला रहा गया। उसका विचार था कि मुझे इस घोड़े को लेकर यहां से भागना पड़ेगा; परन्तु बाबा भारती ने स्वयं उससे कहा कि इस घटना को किसी के सामने प्रकट न करना। इससे क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? खड्गसिंह ने बहुत सोचा, बहुत सिर मारा; परन्तु कुछ समझ न सका। हार कर उसने अपनी आंखें बाबा भारती के मुख पर गड़ा दीं, और पूछा—बाबाजी, इसमें आपको क्या डर है?

सुनकर बाबा भारती ने उत्तर दिया—लोगों को यदि इस घटना का पता लग गया, तो वे किसी गरीब पर विश्वास न करेंगे।

और यह कहते-कहते उन्होंने सुलतान की ओर से इस तरह मुंह मोड़ लिया, जैसे उनका उससे कभी कोई सम्बन्ध ही न था। बाबा भारती चले गये; परन्तु उनके शब्द खड्गसिंह के कानों में उसी प्रकार गूंज रहे थे। सोचता था, कैसे ऊंचे विचार है, कैसा पवित्र भाव है! उन्हें इस घोड़े से

प्रेम था । इसे देखकर उनका मुख फूल की नाईं खिल जाता था । कहते थे, इसके बिना मैं रह न सकूँगा । इसकी रखवाली में वह कई रातें सोये नहीं । भजन-भक्ति न कर रखवाली करते रहे ! परन्तु आज उनके मुख पर दु.ख की रेखा तक न देख पडती थी । उन्हें केवल यह ख्याल था कि कहीं लोग गरीबों पर विश्वास करना न छोड दें । उन्होंने अपनी निज की हानि को मनुष्यत्व की हानि पर न्योछावर कर दिया । ऐसा मनुष्य, मनुष्य नही देवता है ।

३

रात्रि के अन्धकार मे खड्गसिह बाबा भारती के मन्दिर में पहुचा । चारो ओर सन्नाटा था । आकाश पर तारे टिमटिमा रहे थे । थोडी दूर पर गाँवों के कुत्ते भोकते थे । मन्दिर के अन्दर कोई शब्द सुनाई न देता था । खड्गसिह सुलतान की बाग पकड़े हुए था । वह धीरे-धीरे अस्तबल के फाटक पर पहुंचा । फाटक किसी वियोगी की आँखों की तरह चौपट खुला था । किसी समय वहाँ बाबा भारती स्वय लाठी लेकर पहरा देते थे; परन्तु आज उन्हें किसी चोरी, किसी डाके का भय न था । हानि ने उन्हे हानि की तरफ से बे-परवाह कर दिया था । खड्गसिह ने आगे बढकर सुलतान को उसके स्थान पर बाँध दिया और बाहर निकल कर सावधानी से फाटक बन्द कर दिया । इस समय उसकी आँखों में नेकी के आँसू थे ।

अन्धकार में रात्रि ने तीसरा पहर समाप्त किया, और चौथा पहर आरम्भ होते ही बाबा भारती ने अपनी कुटिया से बाहर निकल ठण्डे जल से स्नान किया । उसके पश्चात् इस प्रकार, जैसे कोई स्वप्न में चल रहा हो, उनके पाँव अस्तबल की ओर मुडे, परन्तु फाटक पर पहुंच कर उनको अपनी भूल प्रतीत हुई । साथ ही घोर निराशा ने पाँवों को मन-मन-भर का भारी बना दिया । वह वही रुक गये ।

घोड़े ने स्वाभाविक मेधा से अपने स्वामी के पाँवों की चाप को पहचान लिया, और जोर से हिनहिनाया ।

बाबा भारती दौड़ते हुए अन्दर घुसे, और अपने घोड़े के गले मे लिपट

कर इस प्रकार रोने लगे, जैसे बिछुड़ा हुआ पिता चिरकाल के पश्चात् पुत्र से मिल कर रोता है। बार-बार उसकी पीठ पर हाथ फेरते, बार-बार उसके मुँह पर थपकियाँ देते और कहते थे—अब कोई गरीबो की सहायता मे मुँह न मोड़ेगा।

थोड़ी देर के बाद जब वह अस्तबल से बाहर निकले, तो उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। ये आँसू उसी भूमि पर ठीक उसी जगह गिर रहे थे, जहाँ बाहर निकलने के बाद खड्गसिंह खड़ा होकर रोया था।

दोनो के आँसुओं का उसी भूमि की मिट्टी पर परस्पर मिलाप हो गया।

भगवतीचरण वर्मा

आपका जन्म सन् १६०३ ई० में शफ़ीपुर, जिला उन्नाव में हुआ था। बी० ए० के पश्चात् आपने वकालत पास की। आपने १८ वर्ष की अवस्था से ही साहित्य की सेवा करनी प्रारम्भ कर दी थी जो अब तक अबाध रूप से चल रही है।

आप हिन्दी-साहित्य के मधुर मर्मी कवि, उच्च कोटि के उपन्यासकार तथा सिद्धहस्त कहानीकार और नाटककार हैं। आप अपनी कृति 'चित्रलेखा' द्वारा साहित्य में उच्च स्थान बना चुके हैं।

आपकी कहानियाँ सरस और रोचक होती हैं। सामाजिक कुरीतियों को आपने हास्य और व्यंग्य द्वारा प्रस्फुटित किया है। आपकी अधिकाश रचनाओं में मानव-जीवन की व्याख्या निहित है।

भाषा की सलग्नता और विचारों की स्वच्छता आपकी रचनाओं के विशेष गुण है। भाषा मनोहर प्रवाहपूर्ण होती है।

कथा-साहित्य द्वारा आपने मानव-जीवन की उन गहन गुत्थियों को सुलभाया है जो दर्शन और काव्य के अनुरूप कही जाती हैं। आपकी कहानियों में समाज की रूढियों के प्रति व्यंग्य और कटाक्ष का पुट प्रशंसा करने योग्य होता है।

७

प्रायश्चित्त

अगर कबरी बिल्ली घर-भर में किसी से प्रेम करती थी तो रामू की बहू से और अगर रामू की बहू घर-भर में किसी से घृणा करती थी तो कबरी बिल्ली से। रामू की बहू दो महीने हुए मायके से प्रथम बार ससुराल आई थी, पति की प्यारी और सास की दुलारी, चौदह वर्ष की बालिका। भंडार घर की चाभी उसकी करधनी में लटकने लगी, नौकरों पर उसका हुक्म चलने लगा, और रामू की बहू घर में सब कुछ; सासजी ने माला ली और पूजा-पाठ में मन लगाया।

लेकिन ठहरी चौदह वर्ष की बालिका, कभी भंडार घर खुला है तो कभी भण्डार घर में बैठे-बैठे सो गई। कबरी बिल्ली को मौका मिला, घी-दूध पर अब वह जुट गई। रामू की बहू की जान आफत में और कबरी बिल्ली के छक्के-पंजे। रामू की बहू हांडी में घी रखते-रखते ऊंघ गई और बचा हुआ घी कबरी के पेट में। रामू की बहू दूध ढककर मिसरानी को जिन्स देने गई और दूध नदारद! अगर बात यहीं तक रह जाती तो भी बुरा न था, कबरी रामू की बहू से कुछ ऐसा परच गई थी कि रामू की बहू के लिए खाना-पीना दुश्वार। रामू की बहू के कमरे में रबड़ी से भरी कटोरी पहुंची और रामू जब आए तब कटोरी साफ चटी हुई। बाजार से मलाई आई और जब तक रामू की बहू ने पान लगाया, मलाई गायब! रामू की बहू ने तै कर लिया कि या तो वही घर में रहेगी या फिर कबरी बिल्ली ही। मोरचाबन्दी हो गई और दोनों सतर्क। बिल्ली फसाने का कटघरा आया, उसमें दूध, मलाई, चूहे, और

भी बिल्ली को स्वादिष्ट लगनेवाले विविध प्रकार के व्यंजन रखे गए, लेकिन बिल्ली ने उधर निगाह तक न डाली। इधर कबरी ने सरगर्मी दिखलाई। अभी तक तो वह रामू की बहू से डरती थी, पर अब वह साथ लग गई लेकिन इतने फासले पर कि रामू की बहू उसपर हाथ न लगा सके।

कबरी के हौसले बढ़ जाने से रामू की बहू को घर में रहना मुश्किल हो गया। उसे मिलती थी सास की मीठी झिड़कियां, और पतिदेव को मिलता था रूखा-सूखा भोजन।

एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिए खीर बनाई। पिस्ता, बादाम मखाने और तरह-तरह के मेवे दूध में औटाए गए, सोने का वर्क चिपकाया गया और खीर से भरकर कटोरा कमरे के एक ऐसे ऊंचे ताक पर रखा गया जहां बिल्ली न पहुंच सके। रामू की बहू इसके बाद पान लगाने में लग गई।

उधर कमरे में बिल्ली आई, ताक के नीचे खड़े होकर उसने ऊपर कटोरे की ओर देखा, सूंघा, माल अच्छा है, ताक की ऊंचाई अन्दाजी और रामू की बहू पान लगा रही है। पान लगाकर रामू की बहू सासजी को पान देने चली गई और कबरी ने छलांग मारी, पंजा कटोरे में लगा और कटोरा झनझनाहट की आवाज के साथ फर्श पर।

आवाज रामू की बहू के कान में पहुंची, सास के सामने पान फेंककर वह दौड़ी, क्या देखती है कि फूल का कटोरा टुकड़े-टुकड़े, खीर फर्श पर और बिल्ली डटकर खीर उड़ा रही है। रामू की बहू को देखते ही कबरी चम्पत।

रामू की बहू पर खून सवार हो गया, न रहे बांस न बजे बांसुरी। रामू की बहू ने कबरी की हत्या पर कमर कस ली। रात-भर उसे नींद न आई, किस दांव से कबरी पर वार किया जाए कि फिर ज़िन्दा न बचे, यही पड़े-पड़े सोचती रही। सुबह हुई और वह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठी बड़े प्रेम से उसे देख रही है।

रामू की बहू ने कुछ सोचा, इसके बाद मुस्कराती हुई वह उठी, कबरी रामू की बहू के उठते ही खिसक गई। रामू की बहू एक कटोरा दूध कमरे के दरवाजे की देहरी पर रखकर चली गई। हाथ में पाटा लेकर वह लौटी तो देखती है कि कबरी दूध पर जुटी हुई है। मौका हाथ में आ गया। सारा बल लगाकर पाटा उसने बिल्ली पर पटक दिया। कबरी न हिली न डुली, न चीखी न चिल्लाई, बस एकदम उलट गई।

आवाज जो हुई तो महरी झाड़ू छोड़कर, मिसरानी रसोई छोड़कर और सास पूजा छोड़कर घटनास्थल पर उपस्थित हो गई। रामू की बहू सिर झुकाए अपराधिनी की भांति बातें सुन रही है।

महरी बोली, "अरे राम, बिल्ली तो मर गई। मांजी, बिल्ली की हत्या बहू से हो गई, यह तो बुरा हुआ।"

मिसरानी बोली, "मांजी, बिल्ली की हत्या और आदमी की हत्या बराबर है। हम तो रसोई न बनाएंगी, जब तक बहू के सिर हत्या रहेगी।"

सासजी बोली, "हां, ठीक तो कहती हो, अब जब तक बहू के सिर से हत्या न उतर जाए तब तक न कोई पानी पी सकता है, न खाना खा सकता है। बहू, यह क्या कर डाला!"

महरी ने फिर कहा, "फिर क्या हो, कहो तो पंडितजी को बुलाय लाई।"

सास की जान में जान आई, "अरे हां, जल्दी दौड़ के पंडितजी को बुला ला।"

बिल्ली की हत्या की खबर बिजली की तरह पड़ोस में फैल गई। पडोस की औरतों का रामू के घर में तांता बध गया। चारो तरफ से प्रश्नों की बौछार और रामू की बहू सिर झुकाए बैठी।

पंडित परममुख को जब यह खबर मिली उस समय वे पूजा कर रहे थे। खबर पाते ही वे उठ पड़े। पण्डिताइन से मुस्कराते हुए बोले, "भोजन न बनाना। लाला घासीराम की पतोहू ने बिल्ली मार डाली। प्रायश्चित्त

होगा, पकवानों पर हाथ लगेगा।"

पण्डित परमसुख चौबे छोटे-से मोटे-से आदमी थे। लम्बाई चार फुट दस इंच और तोंद का घेरा अट्ठावन इंच। चेहरा गोल-मटोल, मूछ बड़ी-बड़ी रंग गोरा, चोटी कमर तक पहुंचती हुई।

कहा जाता है कि मथुरा में जब पसेरी खुराकवाले पंडितों को ढूंढ़ा जाता था तो पण्डित परमसुखजी को उस लिस्ट में प्रथम स्थान दिया जाता था।

पंडित परमसुख पहुंचे, और कोरम पूरा हुआ। पंचायत बैठी—रामू की मां, मिसरानी, किसनू की मां, छन्नू की दादी और पंडित परमसुख! बाकी सब स्त्रियां बहू से सहानुभूति प्रकट कर रही थीं।

किसनू की मां ने कहा, "पंडितजी, बिल्ली की हत्या करने से कौन नरक मिलता है?"

पंडित परमसुख ने पत्रा देखते हुए कहा, "बिल्ली की हत्या अकेले से तो नरक का नाम नहीं बतलाया जा सकता, वह महूरत भी जब मालूम हो जब बिल्ली की हत्या हुई, तब नरक का पता लग सकता है।"

"यही कोई सात बजे सुबह।" मिसरानीजी ने कहा।

पंडित परमसुख ने पन्ने के पन्ने उलटे, अक्षरों पर उंगलियां चलाईं, माथे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा। चेहरे पर धुंधलापन आया। माथे पर बल पड़े, नाक कुछ सिकुड़ी और स्वर गम्भीर हो गया, "हरे कृष्ण! हरे कृष्ण! बड़ा बुरा हुआ। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में बिल्ली की हत्या! घोर कुम्भी-पाक नरक का विधान है! रामू की मां, यह तो बड़ा बुरा हुआ!"

रामू की मां की आंखों में आंसू आ गए, "तो फिर पंडितजी, अब क्या होगा, आप ही बतलाएं!"

पंडित परमसुख मुस्कराए, "रामू की मां, चिंता की कौन-सी बात है? हम पुरोहित फिर कौन दिन के लिए हैं? शास्त्रों में प्रायश्चित्त का विधान है, सो प्रायश्चित्त से सब कुछ ठीक हो जाएगा।"

रामू की मा ने कहा, "पंडित जी, उसीलिए तो आपको बुलाया था, अब आगे बतलाओ कि क्या किया जाए।"

"किया क्या जाए—यही एक सोने की बिल्ली बनाकर बहू से दान करवा दी जाय—जब तक बिल्ली न दे दी जाएगी तब तक तो घर अपवित्र रहेगा, बिल्ली दान देने के बाद इक्कीस दिन का पाठ हो जाए।"

छन्नू की दादी—हा और क्या, पंडितजी तो ठीक कहते है, बिल्ली अभी दान दे दी जाए और पाठ फिर हो जाए।

रामू की मा ने कहा, "तो पंडितजी, कितने तोले की बिल्ली बनवाई जाए?"

पंडित परमसुख मुस्कराए, अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा, "बिल्ली कितने तोले की बनाई जाए? अरे रामू की मां, शास्त्रों में तो लिखा है कि बिल्ली के वजन-भर सोने की बिल्ली बनवाई जाए। लेकिन अब कलियुग आ गया है, धर्म-कर्म का नाश हो गया है, श्रद्धा नही रही। सो रामू की मां, बिल्ली के तौल-भर की बिल्ली तो क्या बनेगी, क्योंकि बिल्ली बीस-इक्कीस सेर से कम की क्या होगी, हां, कम से कम इक्कीस तोले की बिल्ली बनवा के दान करवा दो, और आगे तो अपनी-अपनी श्रद्धा!"

रामू की मां ने आखें फाडकर पंडित परमसुख को देखा, "अरे बाप रे! इक्कीस तोला सोना! पंडितजी यह तो बहुत है। तोला-भर की बिल्ली से काम निकलेगा?"

पंडित परमसुख हस पडे, "रामू की मा! एक तोला सोने की बिल्ली! अरे रुपये का लोभ बहू से बढ़ गया? बहू के सिर बडा पाप है—इसमे इतना लोभ ठीक नहीं!"

मोल-तोल शुरू हुआ और मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक होगया।

इसके बाद पूजा-पाठ की बात आई। पण्डित परमसुख ने कहा, "उसमें क्या मुश्किल है, हम लोग किस दिन के लिए हैं। रामू की मा,

मे पाठ कर दिया करूगा, पूजा की सामग्री आप हमारे घर भिजवा देना।"

"पूजा का कितना सामान लगेगा ?"

"अरे कम से कम सामान मे हम पूजा कर देगे। दान के लिए करीब दस मन गेहू, एक मन चावल, एक मन दाल, मन-भर तिल, पाच मन जो, पांच मन चना, चार पसेरी घी और मन-भर नमक भी लगेगा।"

"अरे बाप रे, इतना सामान ! इसम तो सौ डेढ़-सौ रुपया खर्च हो जायेगा।" रामू की मा ने रुआंई-सी होकर कहा।

"फिर इससे कम मे तो काम न चलेगा। बिल्ली की हत्या कितना बड़ा पाप है, रामू की मा ! खर्च को देखते वक्त पहले वह के पाप को तो देख लो ! यह तो प्रायश्चित्त है।"

पण्डित परमसुख की बात से पच प्रभावित हुए, किसनू की मा ने कहा, "पण्डितजी ठीक तो कहते है।"

रामू की दादी ने कहा, "और नहीं तो क्या, दान-पुन्न से ही पाप कटते है। दान-पुन्न में किफायत ठीक नही।"

मिसरानी ने कहा, "और फिर माजी, आप लोग बड़े आदमी ठहरे। इतना खर्च क्यो आप लोगो को अखरेगा ?"

रामू की मा ने अपने चारो ओर देखा—सभी पच पण्डितजी के साथ। पण्डित परमसुख मुसकरा रहे थे। उन्होने कहा, "रामू की मा, एक तरफ तो बहू के लिए कुम्भीपाक नरक है और दूसरी तरफ तुम्हारे जिम्मे थोड़ा-सा खर्चा है। सो न मोड़ो।"

एक ठडी सास लेते हुए रामू की मा ने कहा, "अब तो जो नाच नचाओगे, नाचना ही पड़ेगा।"

पण्डित परमसुख जरा कुछ बिगड़कर बोले, "रामू की मां ! यह तो खुशी की बात है अगर तुम्हे यह अखरता है तो न करो—मै चला।" इतना कहकर पण्डितजी ने पोथी-पत्रा बटोरा।

"अरे पण्डितजी, रामू की मा को कुछ नही अखरता—बेचारी को

कितना दु ख है—बिगड़ो न ।" मिसरानी, छन्नू की दादी और किसनू की मां ने एक स्वर मे कहा ।

रामू की मां ने पण्डितजी के पैर पकड़े—और पण्डितजी ने अब जमकर आसन जमाया ।

"और क्या हो ?"

"इक्कीस दिन के पाठ के इक्कीस रुपये और इक्कीस दिन तक दोनों बखत पांच-पांच ब्राह्मणों को भोजन करवाना पड़ेगा ।"—कुछ रुककर पण्डित परमसुख ने कहा, "सो इसकी चिन्ता न करो, मैं अकेले दोनो समय भोजन कर लूगा और मेरे अकेले भोजन करने से पांच ब्राह्मण के भोजन का फल मिल जाएगा ।"

"यह तो पण्डितजी ठीक कहते है, पण्डितजी की तोंद तो देखो ।" मिसरानी ने मुस्कराते हुए पडितजी पर व्यग्य किया ।

"अच्छा, तो फिर प्रायश्चित्त का प्रबन्ध करवाओ रामू की मां, ग्यारह तोला सोना निकालो, मैं उसकी बिल्ली बनवा लाऊ—दो घटे में मैं बनवाकर लौटूंगा तब तक सब पूजा का प्रबन्ध कर रखो—और देखो, पूजा के लिए—"

पण्डितजी की बात खत्म भी न हुई थी कि महरी हांफती हुई कमरे मे घुस आई और सब लोग चौक उठे । रामू की मां ने घबराकर कहा, "अरी क्या हुआ री !"

महरी ने लडखड़ाते स्वर में कहा, "मांजी, बिल्ली तो उठकर भाग गई ।"

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

वाजपेयीजी का जन्म १८९९ ई० में कानपुर में हुआ। स्कूली शिक्षा आठवीं से आगे नहीं बढ़ी।

आपने अपना जीवन अध्यापक के रूप में शुरू किया पर बाद में पुस्तकालय के अध्यक्षपद पर कार्य करने लगे। पुस्तकालय में मां सरस्वती की अराधना का सुअवसर आपको मिला और आपने उसका पूरा सदुपयोग किया। अध्ययन से ही आपको लेखन की प्रेरणा मिली।

कहानी-लेखक के अतिरिक्त उपन्यासकार के रूप में भी आपने बहुत प्रसिद्धि पाई है। आप किसी साधारण से कथानक को अपनी लेखनी के जादुई स्पर्श से असाधारण बना देते हैं। विशेष रूप से आपकी कहानियों का अन्त बहुत प्रभावशाली होता है। आपकी कृतियों में मनोवैज्ञानिक स्पर्श के साथ उदात्त भावों का निरूपण मिलता है।

८

मिठाईवाला

बहुत ही मीठे स्वरों के साथ वह गलियों में घूमता हुआ कहता, "बच्चों को बहलाने वाला, खिलौनेवाला।"

इस अधूरे वाक्य को वह ऐसे विचित्र, किन्तु मादक मधुर ढंग से गाकर कहता है कि सुननेवाले एक बार अस्थिर हो उठते। उसके स्नेहाभिषिक्त कण्ठ से फूटा हुआ उपर्युक्त गान सुनकर निकट के मकानों में हलचल मच जाती। छोटे-छोटे बच्चों को अपनी गोद में लिए हुए युवतियाँ चिकों को उठाकर छज्जों पर से नीचे झांकने लगती। गलियों और उनके अन्तर्व्यापी छोटे-छोटे उद्यानों में खेलते और इठलाते हुए बच्चों का झुण्ड उसे घेर लेता। और वह खिलौनेवाला वहीं कहीं बैठकर खिलौनों की पेटी खोल देता।

बच्चे खिलौने देखकर पुलकित हो उठते। वे पैसे लाकर खिलौनों का मोल-भाव करने लगते। पूछते, "इछका दाम क्या है, औल इछका, औल इछका?" खिलौनेवाला बच्चों को देखता, उनकी नन्ही-नन्ही अंगुलियों और हथेलियों से पैसे ले लेता और बच्चों की इच्छानुसार उन्हें खिलौने दे देता। खिलौने लेकर फिर बच्चे उछलने-कूदने लगते और फिर खिलौनेवाला उसी प्रकार गाकर चल देता, "बच्चों को बहलानेवाला खिलौनेवाला।" सागर की हिलोर की भाँति उसका वह मादक गान गली-भर के मकानों में, इस ओर से उस ओर तक लहराता हुआ पहुंचता और खिलौनेवाला आगे बढ़ जाता।

राय विजयबहादुर के बच्चे भी एक दिन खिलौने लेकर घर आए।

वे दो बच्चे थे—चुन्नू और मुन्नू। चुन्नू जब खिलौने ले आया तो बोला, "मेरा घोला कैछा छुन्दल ऐ !"

मुन्नू बोला, " औल देखो मेला आती कैछा छुन्दल ऐ !"

दोनों अपने हाथी-घोडे लेकर घर-भर मे उछलने लगे। इन बच्चो की मां रोहिणी कुछ देर तक खड़े-खड उनका खेल निरखती रही। अन्त मे दोनों को बुलाकर उसने पूछा, "अरे ओ चुन्नू-मुन्नू, ये खिलौने तुमने कितने में लिए है ?"

मुन्नू बोला, "दो पैछे मे खिलौनेवाला दे गआ ऐ !"

रोहिणी सोचने लगी, 'इतने सस्ते कैसे दे गया है ?'

कैसे दे गया है, यह तो वही जाने। लेकिन दे तो गया ही है, इतना तो निश्चय है।

जरा-सी बात ठहरी। रोहिणी अपने काम में लग गई। फिर कभी उसे इसपर विचार करने की आवश्यकता भला क्यों पडती !

२

छः महीने बाद —

नगर-भर मे दो ही चार दिनों मे एक मुरलीवाले के आने का समाचार फैल गया। लोग कहने लगे, "भाई वाह ! मुरली बजाने मे यह एक ही उस्ताद है। मुरली बजाकर, गाना सुनाकर, वह मुरली बेचता भी है। सो भी दो दो पैसे में। भला इसमें क्या मिलता होगा ! मेहनत भी तो न आती होगी।

एक व्यक्ति ने पूछ लिया, "कैसा है वह मुरलीवाला, मैंने तो उसे नहीं देखा।"

उत्तर मिला, 'उमर तो उसकी अभी अधिक न होगी, यही तीस-बत्तीस का होगा। दुबला-पतला गोरा युवक है, बीकानेरी रंगीन साफा बांधता है।'

"वही तो नहीं, जो पहले खिलौने बेचता था ?"

"हा, जो आकार-प्रकार तुमने बतलाया, उसी प्रकार का वह भी था।"

"तो वही होगा। पर भई, है वह एक ही उस्ताद।"

प्रतिदिन इसी प्रकार उस मुरलीवाले की चर्चा होती। प्रतिदिन नगर की प्रत्येक गली में उसका मादक मृदुल स्वर सुनाई पड़ता, "बच्चों को बहलानेवाला मुरलियावाला!"

रोहिणी ने भी मुरलीवाले का यह स्वर सुना। तुरन्त ही उसे खिलौनेवाले का स्मरण हो आया। उसने मन ही मन कहा, 'खिलौने-वाला भी इस तरह गा-गाकर खिलौने बेचा करता था।'

रोहिणी उठकर अपने पति विजयबाबू के पास गई, बोली, "जरा उस मुरलीवाले को बुलाओ तो, चुन्नू-मुन्नू के लिए ले लू। क्या जाने यह इधर आए, न आए। वे भी, जान पडता है, पार्क में खेलने निकल गए हैं।"

विजयबाबू एक समाचार-पत्र पढ रहे थे। उसी तरह उसे लिए हुए वे दरवाज़े पर आकर मुरलीवाले से बोले, "क्यों भाई, किस तरह देते हो मुरली?"

किसीकी टोपी गली में गिर पडी। किसीका जूता पार्क मे ही छूट गया और किसी की सुथनी (पायजामा) ही ढीली होकर लटक आई। इस तरह दौडते-हांफते हुए बच्चों का झुण्ड आ पहुंचा। एक स्वर से सब बोल उठे, "अम वी लेंदे मुल्ली, औल अम बी लेंदे मुल्ली।"

मुरलीवाला हर्ष-गद्‌गद् हो उठा, "सबको देंगे भैया, ज़रा रुको, ज़रा ठहरो, एक-एक को लेने दो। अभी इतनी जल्दी हम कही लौट थोड़े ही जाएंगे। बेचने तो आए ही है। और हैं भी इस समय मेरे पास एक-दो नहीं, पूरी सत्तावन···हां बाबूजी, क्या पूछा था आपने, कितने मे दी?··· दीं तो वैसे तीन-तीन पैसे के हिसाब से हैं, पर आपको दो-दो पैसे में ही दे दूंगा।"

विजयबाबू भीतर-बाहर दोनों रूपों से मुस्करा दिए। मन ही मन कहने लगे—कैसा ठग है! देता सबको इसी भाव से है, पर मुझपर उलटा एहसान लाद रहा है। फिर, "तुम लोगों की झूठ बोलने की आदत

होती है। दते होगे सभीको दो-दो पैसे में, पर एहसान का बोझ मेरे ऊपर लाद रहे हो।"

मुरलीवाला एकदम अप्रतिभ हो उठा। बोला, आपको क्या पता बाबूजी कि इनकी असली लागत क्या है। यह तो ग्राहकों का दस्तूर होता है कि दूकानदार चाहे हानि उठाकर चीज़ क्यों न बेचे, पर ग्राहक यही समझते है—दूकानदार मुझे लूट रहा है।···आप भला काहे को विश्वास करेगे! लेकिन सच पूछिए तो बाबूजी, इनका असली दाम दो ही पैसे है। आप कही मे भी दो-दो पैसे में ये मुरलियां नही पा सकते। मैने तो पूरी एक हजार बनवाई थीं, तब मुझे इस भाव पडी है।"

विजयबाबू बोले, "अच्छा, अच्छा, मुझे ज्यादा वक्त नही है, जल्दी से दो ठो निकाल दो।"

दो मुरलिया लेकर विजयबाबू फिर मकान के भीतर पहुच गए।

मुरलीवाला देर तक बच्चों के झुण्ड में मुरलिया बेचता रहा। उसके पास कई रग की मुरलिया थी। बच्चे जो रग पसद करते, मुरलीवाला उसी रग की मुरली निकाल देता।

"यह बड़ी अच्छी मुरली है, तुम यही ले लो बाबू, राजाबाबू तुम्हारे लायक तो बस यह है।···हा भैये, तुमको वही देंगे। यह लो···· ···· तुमको वैसी न चाहिए, ऐसी चाहिए?···यह नारगी रग की एक?··· अच्छा यही लो।···पैसे नहीं है? अच्छा अम्मा से पैसे ले आओ! मैं अभी बैठा हू।···तुम ले आए पैसे?···अच्छा यह लो तुम्हारे लिए मैने पहले से ही निकाल रखी थी।· तुमको पैसे नही मिले! तुमने अम्मा से ठीक तरह से न मांगे होंगे? धोती पकड़ के पैरों मे लिपट के अम्मा से पैसे मांगे जाते है, बाबू···हां फिर जाओ। अबकी बार मिल जाएगे।···दुअन्नी है? तो क्या हुआ, ये छ: पैसे वापस लो। ठीक हो गया न हिसाब?···मिल गए पैसे! देखो मैंने कैसी तरकीब बताई! अच्छा, अब तो किसी को नहीं लेना है?···सब ले चुके? तुम्हारी मां के पास पैसे नहीं है! अच्छा तुम भी यह लो।···अच्छा तो मैं चलता हूं।"

इस तरह मुरलीवाला फिर आगे बढ गया ।

३

आज अपने मकान मे बैठी हुई रोहिणी मुरलीवाले की सारी बातें सुनती रही । आज भी उसने अनुभव किया, बच्चों के साथ इतने प्यार से बातें करनेवाला पहले कभी नही आया—फिर वह सौदा भी कैसा सस्ता बेचता है और आदमी कैसा भला जान पडता है ! समय की बात है, जो बेचारा इस तरह मारा-मारा फिरता है । पेट जो कराए सो थोड़ा ।

इसी समय मुरलीवाले का तीक्ष्ण स्वर निकट की दूसरी गली से सुनाई पडा—बच्चो को बहलानेवाला, मुरलीवाला ?

रोहिणी इसे सुनकर मन ही मन कहने लगी, 'स्वर कैसा मीठा है इसका !'

बहुत दिनो तक रोहिणी को मुरलीवाले का यह मीठा स्वर और उसकी बच्चों के प्रति स्नेहसिक्त बाते याद आती रही । महीने के महीने आए और चले गए, पर मुरलीवाला न आया । फिर धीरे-धीरे उसकी स्मृति क्षीण होती गई ।

४

आठ मास बाद···

सरदी के दिन थे । रोहिणी स्नान करके अपने मकान की छत पर चढकर आजानुविलम्बित केश-राशि सुखा रही थी । इसी समय नीचे की गली मे सुनाई पडा—'बच्चों को बहलानेवाला, मिठाईवाला ।"

मिठाईवाले का यह स्वर परिचित था, झट से रोहिणी नीचे उतर आई । इस समय उसके पति मकान मे नही थे, हा उसकी वृद्धा दादी थी । रोहिणी उसके निकट आकर बोली, "दादी, चुन्नू के लिए मिठाई लेनी है । जरा कमरे मे चलकर ठहराओ तो । मै उधर कैसे जाऊ, कोई आता न हो । जरा हटकर मै भी चिक की ओट मे बैठी रहूंगी ।"

दादी उटकर कमरे मे आकर बोली, "ए मिठाईवाले, इधर आना ।"

मिठाईवाला निकट आ गया। बोला, "मा, कितनी मिठाई दू ? नई तरह की मिठाइया है, रग-बिरगी, कुछ-कुछ खट्टी, कुछ-कुछ मीठी और जायकेदार। बड़ी देर तक मुह मे टिकती है। जल्दी नही घुलती। बच्चे बड़े चाव मे चूसते है। इन गुणो के सिवा ये खासी को भी दूर करती है। कितनी दू ? चटपटी, गोल और पहलदार गोलिया है। पैसे की सोलह देता हू।"

दादी बोली, "सोलह तो बहुत कम होती है, भला पच्चीस तो देते।"

मिठाईवाला— नही दादी, अधिक नही दे सकता। इतनी भी कैसे देता हूं, यह मै आपको क्या ···। खैर, मैं अधिक तो न दे सकूगा।

रोहिणी दादी के पास ही बैठी थी। बोली, "दादी, फिर भी काफी सस्ती दे रहा है, चार पैसे की ले लो। ये पैसे रहे।"

मिठाईवाला मिठाइया गिनने लगा।

'तो चार पैसे की दे दो। अच्छा पच्चीस न सही, बीस ही दे दो। अरे हा, मैं बूढी हुई, मोल-भाव मुझे अब ज्यादा करना नही आता।"··· कहते हुए दादी के पोपले मुह की जरा-सी मुस्कराहट भी फूट निकली।

रोहिणी ने दादी से कहा, "दादी इससे पूछो, 'तुम इस शहर मे कभी और भी आए थे, या पहली बार ही आए हो ? यहा के निवासी तो तुम हो नही।' "

दादी ने इस कथन को दोहराने की चेष्टा की ही थी कि मिठाई-वाले ने उत्तर दिया, "पहली बार नहीं, और भी कई बार आ चुका हू।"

रोहिणी चिक की आड ही से बोली, "पहले यही मिठाई बेचते हुए आए थे या और कोई चीज लेकर ?"

मिठाई वाला हर्ष सशय और विस्मयादि भावों मे डूबकर बोला, "इससे पहले मुरली लेकर आया था, और उससे भी पहले खिलौने लेकर।"

रोहिणी का अनुमान ठीक निकला। अब तो वह उससे और भी कुछ बाते पूछने के लिए अस्थिर-अधीर हो उठी। वह बोली, "इन

व्यवसायों में भला तुम्हे क्या मिलता होगा ?"

वह बोला, "मिलता तो क्या है, यही खाने-भर को मिल जाता है। कभी नहीं भी मिलता है। पर हा, सन्तोष और धीरज और कभी-कभी असीम सुख जरूर मिलता है। और यही मैं चाहता भी हूं।"

"सो कैसे ? वह भी बताओ।"

"अब व्यर्थ उन बातों की चर्चा क्या करूं ! उन्हे आप जाने ही दें। उन बातों को सुनकर आपको दुःख होगा।"

"जब इतना बताया है, तब और भी बता दो। मै बहुत उत्सुक हू। तुम्हारा हर्जा न होगा और भी मिठाई मै ले लूगी।"

अतिशय गम्भीरता के साथ मिठाईवाले ने कहा :

"मैं भी अपने नगर का एक प्रतिष्ठित आदमी था। मकान, व्यवसाय, गाड़ी-घोड़े, नौकर-चाकर सभी कुछ था। स्त्री थी, छोटे-छोटे दो बच्चे भी थे। मेरा वह सोने का ससार था। बाहर सम्पत्ति का वैभव था, भीतर सांसारिक सुख था। स्त्री, सुन्दर थी, मेरी प्राण थी। बच्चे ऐसे सुन्दर थे, जैसे सोने के सजीव खिलौने। उनकी अठखेलियों के मारे घर मे कोलाहल मचा रहता था—समय की गति—विधाता की लीला ! अब कोई नही है। दादी, प्राण निकाले नहीं निकले। इसलिए अपने उन बच्चों की खोज में मै निकला हूं। वे सब अन्त मे होंगे तो यही कही। आखिर कहीं न कही तो जन्मे ही होगे। उसी तरह रहता, तो घुल-घुलकर मरता। इस तरह सुख-संतोष के साथ मरूंगा। इस तरह के जीवन में कभी-कभी अपने उन बच्चों की एक झलक-सी मिल जाती है। ऐसा जान पड़ता है, जैसे वे इन्हीं मे उछल-उछलकर हस-हसकर खेल रहे है। पैसो की कमी थोड़े ही है। आपकी दया से पैसे काफी है। जो नही है, इस तरह उसी को पा जाता हू।"

रोहिणी ने अब मिठाईवाले की ओर देखा। देखा—उसकी आंखें आंसुओं से तर हैं।

इसी समय चुन्नू-मुन्नू आ गए। रोहिणी से लिपटकर, उसका अचल

पकड़कर बोले, "अम्मां, मिठाई।"

"मुझसे लो।"—कहकर तत्काल कागज की दो पुड़ियों में मिठाइयां भरकर मिठाईवाले ने चुन्नू-मुन्नू को दे दीं।

रोहिणी ने भीतर से पैसे फेंक दिए।

मिठाईवाले ने पेटी उठाई और कहा, "अब इस बार ये पैसे न लूंगा।"

दादी बोली, "अरे-अरे, न-न, अपने पैसे लिए जा भाई।"

किन्तु तब तक आगे सुनाई पड़ा, उसी प्रकार मृदुल स्वर में—"बच्चों को बहलानेवाला, मिठाईवाला।"

जैनेन्द्रकुमार

श्री जैनेन्द्रकुमार का जन्म अलीगढ़ जिले के कौड़ियागंज नामक गाँव में सन् १९०५ ई० में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा जैन-गुरुकुल, हस्तिनापुर में हुई, तदनन्तर मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करके काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय में इण्टरमीजिएट में प्रविष्ट हुए। महात्मा गाधी के असहयोग आन्दोलन में कारावास में रहकर लिखने की ओर प्रवृत्ति हुई। स्वतन्त्र चिन्तक होने के कारण आपने फिर न तो नौकरी की और न जीविका के लिए लेखन के सिवा कुछ और काम।

सन् १९२८ में प्रथम उपन्यास 'परख' नाम से लिखा जो हिन्दी कथा-साहित्य में बहुत समादृत हुआ। उसी समय से कहानी लिखने की ओर भी आपकी रुचि हुई और पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कहानियाँ प्रकाशित होने लगी। प्रारम्भ के पांच-सात वर्ष मे ही जैनेन्द्रजी भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से मौलिक कलाकार के रूप में विख्यात हो गये।

जैनेन्द्रजी ने प्रेमचन्द-युग से ही कहानी लिखना प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु वे प्रेमचन्दोत्तर युग के प्रवर्त्तक के रूप में विख्यात है। मानसिक संघर्ष और द्वन्द्व का जैसा सजीव चित्रण जैनेन्द्रजी ने अपने कथा-साहित्य में प्रस्तुत किया, वैसा उनसे पहले नहीं हुआ था।

६

पाजेब

बाजार में एक नई तरह की पाजेब चली हैं। पैरों मे पड़कर वे बड़ी अच्छी मालूम होती हैं। उनकी कड़ियां आपस मे लचक के साथ जुड़ी रहती हैं कि पाजेब का मानो निज का आकार कुछ नहीं है, जिस पांव में पड़े उसीके अनुकूल हो रहती हैं।

पास-पडोस में तो सब नन्ही-बड़ी के पैरों मे आप वही पाजेब देख लीजिए। एक ने पहनी कि फिर दूसरी ने भी पहनी। देखा-देखी में इस तरह उनका न पहनना मुश्किल हो गया है।

हमारी मुन्नी ने भी कहा कि बाबूजी, हम पाजेब पहनेंगे। बोलिए भला कठिनाई से चार बरस की उम्र और पाजेब पहनेगी।

मैंने कहा कैसी पाजेब ?

बोली कि हां, वही जैसी रुकमिन पहनती है, जैसी शीला पहनती है।

मैंने कहा कि अच्छा-अच्छा।

बोली कि मैं तो आज ही मंगा लूंगी।

मैंने कहा कि अच्छा भाई आज सही।

उस वक्त तो खैर मुन्नी किसी काम में बहल गई। लेकिन जब दोपहर आई मुन्नी की बुआ, तब वह मुन्नी सहज माननेवाली न थी।

बुआ ने मुन्नी को मिठाई खिलाई और गोद में लिया और कहा कि अच्छा, तो तेरी पाजेब अब के इतवार को जरूर लेती आऊंगी।

इतवार को बुआ आई और पाजेब ले आई। मुन्नी उन्हें पहनकर खुशी के मारे यहां से वहां छुमकती फिरी। रुकमिन के पास गई और

कहा देख रुकमिन, मेरी पाजेब। शीला को अपनी पाजेब दिखाई। सबने पाजेब पहनी देखकर उसे प्यार किया और तारीफ की। सचमुच वह चांदी की सफेद दो-तीन लड़ियां-सी टखनो के चारों ओर लिपटकर, चुपचाप बिछी हुई, ऐसी सुघड़ लगती थी कि बहुत ही, और बच्चों की खुशी का ठिकाना न था।

और हमारे महाशय आशुतोष, जो मुन्नी के बड़े भाई थे, पहले तो मुन्नी को सजी-बजी देखकर बड़े खुश हुए। वे हाथ पकडकर अपनी बढ़िया मुन्नी को पाजेब-सहित दिखाने के लिए आसपास ले गए। मुन्नी की पाजेब का गौरव उन्हे अपना भी मालूम होता था। वे खूब हँसे और ताली पीटी, लेकिन थोडी देर बाद वे ठुमकने लगे कि मुन्नी को पाजेब दी। सो हम भी बाईसिकल लेगे।

बूआ ने कहा कि अच्छा बेटा अबके जन्मदिन को तुझे भी बाईसिकल दिलवाएंगे।

आशा बाबू ने कहा कि हम तो अभी लेगे।

बूआ ने कहा, "छी-छी तू कोई लडकी है ? ज़िद तो लड़कियां किया करती है। और लडकियां रोती है। कहीं बाबू साहब लोग रोते है !"

आशुतोष बाबू ने कहा कि तो हम बाईसिकल जरूर लेगे जन्मदिन-वाले रोज़।

बूआ ने कहा कि हां, यह बात पक्की रही, जन्म-दिन पर तुमको बाईसिकल मिलेगी।

इस तरह वह इतवार का दिन हंसी-खुशी पूरा हुआ। शाम होने पर बच्चों की बूआ चली गई। पाजेब का शौक घडी-भर का था। वह फिर उतारकर रख-रखा दी गई, जिससे कहीं खो न जाए। पाजेब वह बारीक और सुबुक काम की थी और खासे दाम लग गए थे।

श्रीमती ने हमसे कहा कि क्यो जी, लगती तो अच्छी है मै भी एक बनवा लूं ?

मैंने कहा कि क्यों न बनाओ ! तुम कौन चार बरस की नहीं हो ?

खैर, यह हुआ। पर मै रात को अभी अपनी मेज़ पर था कि श्रीमती ने आकर कहा कि तुमने पाजेब तो नही देखी ?

मैंने आश्चर्य से कहा कि क्या मतलब ?

बोलीं कि देखो, यहा मेज़-वेज पर तो नहीं है। एक तो, उसमें की है पर दूसरे पैर की मिलती ही नहीं है। जाने कहा गई ?

मैंने कहा कि जाएगी कहा ? यहीं कही देख लो। मिल जाएगी।

उन्होने मेरे मेज के कागज उठाने-धरने शुरू किए और अलमारी की किताबें टटोल डालने का मनसूबा दिखाया।

मैंने कहा कि यह क्या कर रही हो ? यहां वह कहां से आई ?

जवाब में वे मुझीसे पूछने लगीं कि तो फिर कहा है ?

मैंने कहा कि तुमने ही तो रखी होगी। कहा रखी थी ?

बतलाने लगीं कि मैंने दोपहर के बाद कोई दो बजे उतारकर दोनों को अच्छी तरह सभालकर उस नीचेवाले बक्स मे रख दी थी। अब देखा तो एक है, दूसरी गायब है।

मैंने कहा कि तो चलकर वह इस कमरे मे कैसे आ जाएगी ?

भूल होगई होगी। एक रखी होगी, एक वही-कहीं पर छूट गई होगी। देखो मिल जाएगी। कही जा नहीं सकती।

इसपर श्रीमती कह-सुन करने लगीं कि तुम तो ऐसे ही हो। खुद लापरवाह हो, दोष उलटे मुझे देते हो। कह तो रही हू कि मैंने दोनो संभालकर रखी थी।

मैंने कहा कि सभालकर रखी थी तो फिर यहा-वहां क्यो देख रही हो ? जहां रखी थीं वहां से ले लो न। वहां नही है तो फिर किसीने निकाली ही होगी।

श्रीमती बोली कि मेरा भी यही खयाल हो रहा है। हो न हो, बसी नौकर ने निकाली है। मैंने रखी, तब वह वहा मौजूद भी था।

मैंने कहा कि तो उससे पूछा।

बोलीं कि वह तो साफ इन्कार करता है।

मैंने कहा कि तो फिर ?

श्रीमती जोर से बोलीं कि तो फिर मै क्या बताऊं ? तुम्हें तो किसी बात की फिकर है नही। डांटकर कहते क्यो नही हो, उस बंसी को बुलाकर ? जरूर पाजेब उसीने ली है।

मैंने कहा कि अच्छा, तो उसे क्या कहना होगा ? यह कहूं कि ला भाई पाजेब दे दे !

श्रीमती झल्लाकर बोलीं कि हो चुका सब कुछ तुमसे। तुम्हीने तो उस नौकर की जात को शहजोर बना रखा है। डांट न फटकार, नौकर ऐसे सिर न चढ़ेगा तो क्या होगा ?

मैंने पूछा कि तो तुम्हारा क्या ख्याल है ?

बोलीं कि कह तो रही हू कि किसीने उसे बक्स में से निकाला ही है। और सोलह मे पंद्रह आने यह बंसी है। सुनते हो न, वही है।

मैंने कहा कि मैंने बंसी से पूछा था। उसने नही ली मालूम होती।

इसपर श्रीमती ने कहा कि तुम नौकरों को नहीं जानते। वे बड़े छटे होते है। जरूर बंसी ही चोर है। नही तो क्या फरिश्ते लेने आते।

मैंने कहा तुमने आशुतोष से भी पूछा ?

बोलीं पूछा था। वह तो खुद ट्रंक और बक्स के नीचे घुस-घुसकर खोज लगाने मे मेरी मदद करता रहा है। वह नही ले सकता।

मैंने कहा कि उसे पतग का बड़ा शौक है।

बोलीं कि तुम तो उसे बताते-बरजते कुछ हो नही। उमर होती जा रही है। वह योंही रह जाएगा। तुम्ही हो उसे पतग की शह देनेवाले।

मैंने कहा कि जो कही पाजेब ही पड़ी मिल गई हो तो ?

बोली कि नही, नहीं ! मिलती तो वह बता न देता ?

और बातों-बातो में मालूम हुआ कि उस शाम आशुतोष पतग और एक डोर का पिन्ना नया लाया है।

श्रीमती ने कहा कि यह तुम्हीं हो जिसने पतग की उसे इजाजत दी। बस सारे दिन पतग-पतंग। यह नहीं कि कभी उसे बिठाकर सबक

की भी कोई बात पूछो। मैं सोचती हू कि एक दिन तोड-ताड दूं उसकी सब डोर और पतंग। हा, तो सारे वक्त वही धुन !

मैंने कहा कि खैर, छोडो। कल सवेरे पूछ-ताछ करेंगे।

सवेरे बुलाकर मैंने गम्भीरता से उससे पूछा कि क्यों बेटा, एक पाजेब नही मिल रही है, तुमने तो नही देखी ?

वह गुम हो आया। जैसे नाराज हो। उसने सिर हिलाया कि उसने नहीं ली। पर मुह नही खोला।

मैंने कहा कि देखो बेटे, ली हो तो कोई बात नही, सच कह देना चाहिए।

उसका मुह और भी फूल आया। और वह गुम-सुम बैठ रहा।

मेरे मन मे उस समय तरह-तरह के सिद्धान्त आए। मैंने स्थिर किया कि अपराध के प्रति करुणा ही होनी चाहिए, रोष का अधिकार नहीं है। प्रेम से ही अपराध-वृत्ति को जीता जा सकता है। आतक से उसे दबाना ठीक नही है। बालक का स्वभाव कोमल होता है और सदा ही उससे स्नेह से व्यवहार करना चाहिए इत्यादि।

मैंने कहा कि बेटा आशुतोष, तुम घबराओ नहीं। सच कहने में घबराना नही चाहिए। ली हो तो खुलकर कह दो बेटा ! हम कोई सच कहने की सजा थोडे ही दे सकते है। बल्कि सच बोलने पर तो इनाम मिला करता है।

आशुतोष सब सुनता हुआ बैठा रह गया। उसका मुह सूजा था। वह सामने मेरी आखों मे नही देख रहा था। रह-रहकर उसके माथे पर बल पड़ते थे।

"क्यो बेटे, तुमने ली तो नही ?"

उसने सिर हिलाकर, क्रोध से अस्थिर और तेज आवाज मे कहा कि मैंने नही ली, नही ली। यह कहकर वह रोने को हो आया। पर रोया नही। आखों मे आसू रोक लिए।

उस वक्त मुझे प्रतीत हुआ उग्रता दोष का लक्षण है।

मैंने कहा देखो बेटा डरो नही, अच्छा जाओ। ढूढो, शायद कही

पड़ी हुई वह पाजेब मिल जाए। मिल जाएगी तो हम तुम्हे इनाम देंगे।

वह चला गया और दूसरे कमरे में जाकर पहले तो एक कोने में खड़ा हो गया। कुछ देर चुपचाप खड़े रहकर वह फिर यहां-वहां पाजेब की तलाश में लग गया।

श्रीमती आकर बोलीं कि आशु से तुमने पूछताछ लिया ? क्या ख्याल है ?

मैंने कहा कि सन्देह तो मुझे होता है। नौकर का काम तो यह है नहीं।

श्रीमती ने कहा कि नही जी, आशु भला क्यों लेगा ?

मैं कुछ बोला नही। मेरा मन जाने कैसे गम्भीर प्रेम के भाव से आशुतोष के प्रति उमड़ रहा था। मुझे ऐसा मालूम होता था कि ठीक इस समय आशुतोष को हमें अपनी सहानुभूति से वंचित नही करना चाहिए। बल्कि कुछ अतिरिक्त स्नेह इस समय बालक को मिलना चाहिए। मुझे यह एक भारी दुर्घटना मालूम होती थी। मालूम होता था कि अगर आशुतोष ने चोरी की है तो उसका इतना दोष नहीं है; बल्कि यह हमारे ऊपर बड़ा भारी इलजाम है। बच्चे मे चोरी की आदत भयावह हो सकती है। लेकिन बच्चे के लिए वैसी लाचारी उपस्थित हो आई, यह और भी कहीं भयावह है। यह हमारी आलोचना है। हम उस चोरी से बरी नही हो सकते।

मैंने बुलाकर कहा "अच्छा सुनो ! देखो ! मेरी तरफ देखो, यह बताओ कि पाजेब तुमने छुन्नू को दी है न ?"

वह कुछ देर नही बोला। उसके चेहरे पर रग आया और गया। मैं एक-एक छाया ताडना चाहता था।

मैंने आश्वासन देते हुए कहा कि कोई बात नहीं। हा, हा, बोलो, डरो नही। ठीक बताओ बेटे ! कैसा हमारा सच्चा बेटा है।

मानो बडी कठिनाई के बाद उसने अपना सिर हिलाया।

मैंने बहुत खुश होकर कहा कि दी है न छुन्नू को ?

उसने सिर हिला दिया।

अत्यन्त सांत्वना के स्वर में स्नेहपूर्वक मैंने कहा कि मुह से बोलो। छुन्नू को दी है।

उसने कहा, "हां-ग्रां।"

मैंने अत्यन्त हर्ष के साथ दोनों बांहों मे लेकर उसे उठा लिया। कहा कि ऐसे ही बोल दिया करते हैं अच्छे लड़के। ग्राशू हमारा राजा बेटा है। गर्व के भाव से उसे गोद में लिए-लिए मैं उसकी मा की तरफ गया। उल्लासपूर्वक बोला कि देखो हमारे बेटे ने सच कबूल किया है। पाजेब उसने छुन्नू को दी है।

सुनकर मां उसकी खुश हो ग्राई। उन्होने उसे चूमा। बहुत शाबाशी दी ग्रौर उसकी बलैया लेने लगीं।

ग्राशुतोष भी मुस्करा ग्राया अगरचे एक उदासी भी उसके चेहरे से दूर नहीं हुई थी।

उसके बाद अलग ले जाकर मैंने उससे बड़े प्रेम से पूछा कि पाजेब छुन्नू के पास है न ? जाग्रो, मांग ला सकते हो उससे ?

ग्राशुतोष मेरी ग्रोर देखता हुग्रा बैठा रह गया। मैंने कहा कि जाग्रो बेटे ! ले जाग्रो।

उसने जवाब मे मुह नही खोला।

मैंने ग्राग्रह किया तो वह बोला कि छुन्नू के पास नहीं हुई तो वह कहां से देगा !

मैंने कहा कि तो जिसको उसने दी होगी उसका नाम बता देगा। सुनकर वह चुप हो गया। मेरे बार-बार कहने पर वह यही कहता रहा कि पाजेब छुन्नू के पास नहीं हुई तो वह देगा कहा से ?

अन्त मे हारकर मैंने कहा कि वह कही तो होगी। अच्छा तुमने कहा से उठाई थी ?

"पड़ी मिली थी ?"

"ग्रौर फिर नीचे जाकर वह तुमने छुन्नू को दिखाई ?"

"हां !"

"फिर उसीने कहा कि इसे बेचेगे।

"हां ?"

"कहां बेचने को कहा ?"

"कहा मिठाई लाएंगे !"

"नही पतग लाएगे।"

"अच्छा पतग को कहा ?"

"हां !"

"सो पाजेब छुन्नू के पास रह गई ?"

"हा !"

"तो उसीके पास होनी चाहिए न ? या पतगवाले के पास होगी। जाओ, बेटा उससे ले आओ। कहना हमारे बाबूजी तुम्हे इनाम देगे।"

वह जाना नहीं चाहता था। उसने फिर कहा कि छुन्नू के पास नही हुई तो कहा से देगा ?

मुझे उसकी जिद बुरी मालूम हुई। मैंने कहा कि तो कही तुमने उसे गाड़ दिया है ? क्या किया है ? बोलते क्यों नही ?

वह मेरी ओर देखता रहा और कुछ नही बोला।

मैंने कहा कुछ कहते क्यो नही ?

वह गुम-सुम रह गया। और नहीं बोला।

मैंने डपटकर कहा कि जाओ, जहा हो वहीं से पाजेब लेकर आओ।

जब वह अपनी जगह से नही उठा और नहीं गया तो मैंने उसे कान पकडकर उठाया। कहा कि सुनते हो ? जाओ पाजेब लेकर आओ। नहीं तो घर म तुम्हारा काम नही है।

उस तरह उठाया जाकर वह उठ गया और कमरे से बाहर निकल गया। निकलकर बरामदे के एक कोने मे रूठा मुह बनाकर खडा रह गया।

मुझे बड़ा क्षोभ हो रहा था। यह लडका सच बोलकर अब किस बात से घबरा रहा है, यह मैं कुछ समझ न सका। मैंने बाहर आकर

ज़रा धीरे से कहा कि जाओ भाई, जाकर छुन्नू से कहते क्यों नहीं हो ?

पहले तो उसने कोई जवाब नही दिया और जब जवाब दिया तो बार-बार कहने लगा कि छुन्नू के पास नही हुई तो वह वहां से देगा ?

मैंने कहा कि जितने में उसने बेची होगी वह दाम दे देंगे। समझे न ? जाओ, तुम कहो तो।

छुन्नू की मा ने कहा कि उनका लडका ऐसा काम नहीं कर सकता। उसने पाजेब नही देखी।

जिसपर आशुतोष की मा ने कहा कि तुम्हारा छुन्नू झूठ बोलता है। क्यो रे आशुतोष तैने दी थी न ?

आशुतोष ने धीरे से कहा कि हा, दी थी।

दूसरी ओर से छुन्नू बढ़कर आया और हाथ फटकारकर बोला कि मुझे नही दी। क्यो रे मुझे कब दी थी ?

आशुतोष ने जिद बांधकर कहा कि दी तो थी। कह दो नही दी थी ?

नतीजा यह हुआ कि छुन्नू की मा ने छुन्नू को खूब पीटा और खुद भी रोने लगी। कहती जाती कि हाय रे, अब हम चोर हो गए। यह कुलच्छिनी औलाद जाने कब मिटेगी ?

बात दूर तक फैल चली। पडोस की स्त्रियों मे पवन पड़ने लगी। और श्रीमती ने घर लौटकर कहा कि छुन्नू और उसकी मां दोनो एक-से हैं।

मैंने कहा कि तुमने तेजा-तेजी क्यो कर डाली ? ऐसे कोई बात भला कभी सुलझती है।

बोली कि हा मैं तेज़ बोलती हूं। अब जाओ ना, तुम्हीं उनके पास से पाजेब निकालकर लाते क्यो नही, तब जानू जब पाजेब निकलवा दो।

मैंने कहा कि पाजेब से बढ़कर शान्ति है। और अशान्ति से तो पाजेब मिल नहीं जाएगी।

श्रीमती बुदबुदाती हुई नाराज होकर मेरे सामने से चली गई।

थोड़ी देर बाद छुन्नू की मा हमारे घर आई। श्रीमती उन्हे लाई थी। अब उनके बीच गर्मी नही थी। उन्होने मेरे सामने आकर कहा कि छुन्नू तो पाजेब के लिए इन्कार करता है। वह पाजेब कितने की थी, मैं उसके दाम भर सकती हूं।

मैंने कहा, "यह आप क्या कहती है। बच्चे-बच्चे है। आपने छुन्नू से सहूलियत से पूछा भी ?"

उन्होंने उसी समय छुन्नू को बुलाकर मेरे सामने कर दिया। कहा कि क्यो रे, बता क्यो नही देता जो तूने पाजेब देखी हो ?

छुन्नू ने जोर से सिर हिलाकर इन्कार किया। और बताया कि पाजेब आशुतोष के हाथ मे मैंने देखी थी और वह पतंगवाले को दे आया है। मैंने खूब देखी थी, वह चांदी की थी।

"तुम्हे ठीक मालूम है ?"

"हां, वह मुझसे कह रहा था कि तू च... पतंग लाएगे।"

"पाजेब कितनी बड़ी थी ? बताओ तो।"

छुन्नू ने उसका आकार बताया। जो ठीक ही था।

मैंने उसकी मा की तरफ देखकर कहा कि देखिए न पहले यही कहता था कि मैंने पाजेब देखी तक नही। अब कहता है कि देखी है।

मा ने मेरे सामने छुन्नू को खींचकर तभी धम्म-धम्म पीटना शुरू कर दिया। कहा कि क्यो रे झूठ बोलता है ? तेरी चमड़ी न उधेड़ी तो मैं नही।

मैंने बीच-बचाव करके छुन्नू को बचाया। वह शहीद की भांति पिटता रहा था। रोया बिलकुल नही था और एक कोने मे खड़े आशुतोष को जाने किस भाव से वह देख रहा था।

खैर, मैंने सबको छुट्टी दी। कहा कि जाओ बेटा छुन्नू, खेलो। उसकी मां को कहा कि आप उसे मारिएगा नही। और पाजेब कोई ऐसी बड़ी चीज नही है।

छुन्नू चला गया। तब, उसकी मां ने पूछा कि आप उसे कसूरवार समझते हैं ?

मैंने कहा कि मालूम तो होता है कि उसे कुछ पता है। और वह मामले में शामिल है।

इसपर छुन्नू की मा ने पास बैठी हुई मेरी पत्नी से कहा, "चलो बहिनजी मैं तुम्हें अपना सारा घर दिखाए देती हूं। एक-एक चीज देख लो। होगी पाजेब तो जाएगी कहा ?"

मैंने कहा, "छोड़िए भी। बेबात की बात बढ़ाने से क्या फायदा।" सो ज्यों-त्यों मैंने उसे दिलासा दिया। नहीं तो वह छुन्नू को पीट-पाटकर हाल-बेहाल कर डालने का प्रण ही उठाए ले रही थी। "कुलच्छन, आज उसी धरती मे नही गाड दिया, तो मेरा नाम नहीं।"

खैर, जिस-तिस भाति बखेडा टाला। मैं इस झझट मे दफ्तर भी समय पर नहीं जा सका। जाते वक्त श्रीमती को कह गया कि देखो आशुतोष को धमकाना मत। प्यार मे सारी बातें पूछना। धमकाने से बच्चे बिगड़ जाते है, और हाथ कुछ नही आता। समझी न ?

शाम को दफ्तर मे लौटा तो श्रीमती ने सूचना दी कि आशुतोष ने सब बतला दिया है। ग्यारह आने पैसे में वह पाजेब पतगवाले को दी है। पैसे उसने थोड़े-थोड़े करके देने को कहे है। पाच आने जो दिए वे छुन्नू के पास है। इस तरह रत्ती-रत्ती बात उसने कह दी है।

कहने लगी कि मैने बडे प्यार मे पूछ-पूछकर यह सब उसके पेट मे से निकाला है। दो-तीन घण्टे मैं मगज मारती रही। हाय राम, बच्चे का भी क्या जी होता है।

मै सुनकर खुश हुआ। मैंने कहा कि चलो अच्छा है, अब पांच आने भेजकर पाजेब मगा लेंगे। लेकिन यह पतगवाला भी कितना बदमाश है, बच्चों के हाथ से ऐसी चीजें लेता है। उसे पुलिस मे दे देना चाहिए। उच्चक्का कही का !

फिर मैंने पूछा कि आशुतोष कहां है ?

उन्होंने बताया कि बाहर ही कहीं खेल-खाल रहा होगा।

मैंने कहा कि बंसी, जाकर उसे बुला तो लाओ।

बंसी गया और उसने आकर कहा कि वे अभी आते हैं।

"क्या कर रहा है ?"

"छुन्नू के साथ गिल्ली-डंडा खेल रहे हैं।"

थोड़ी देर में आशुतोष आया। तब मैंने उसे गोद में लेकर प्यार किया। आते-आते उसका चेहरा उदास हो गया था और गोद में लेने पर वह विशेष प्रसन्न नहीं मालूम हुआ।

उसकी मां ने खुश होकर कहा कि हमारे आशुतोष ने सब बातें अपने-आप पूरी-पूरी बता दी हैं। हमारा आशुतोष बड़ा सच्चा लड़का है।

आशुतोष मेरी गोद में टिका रहा। लेकिन अपनी बड़ाई सुनकर भी उसको कुछ हर्ष नहीं हुआ प्रतीत होता था।

मैंने कहा कि आओ, चलो। अब क्या बात है। क्यों हज़रत तुमको पांच ही आने तो मिले हैं न ? हमसे पांच आने मांग लेते तो क्या हम न देते ? सुना, अब से ऐसा मत करना बेटे !

कमरे में ले जाकर मैंने उससे फिर पूछताछ की, "क्यों बेटा, पतंगवाले ने पांच आने तुम्हें दिए न ?"

"हां !"

"और वह छुन्नू के पास है ?"

"हां !"

"अभी तो उसके पास होंगे न ?"

"नहीं।"

"खर्च कर दिए ?"

"हां।"

"खर्च किए कि नहीं खर्च किए ?"

उस ओर से प्रश्न करने पर वह मेरी ओर देखता रहा, उत्तर नहीं दिया।

"बताओ खर्च कर दिए कि अभी हैं ?"

जवाब में उसने एक बार 'हां' कहा तो दूसरी बार 'नहीं' कहा।

मैंने कहा कि तो यह क्यो नहीं कहते कि तुम्हें नहीं मालूम है ?

"हां।"

"बेटा मालूम है न ?"

"हा।"

"पतगवाले से पैसे छुन्नू ने लिए है न ?"

"हां।"

"तुमने क्यों नही लिए ?"

वह चुप।

"पांचों इकन्नी थी, या दुअन्नी और पैसे भी थे ?"

वह चुप।

"बतलाते क्यो नहीं हो ?"

चुप !

"इकन्निया कितनी थीं, बोलो ?"

"दो।"

"बाकी पैसे थे ?"

"हा।"

"दुअन्नी नही थीं ?"

"हा।"

"दुअन्नी थी ?"

"हां।"

मुझे क्रोध आने लगा। डपटकर कहा कि सच क्यों नहीं बोलते जी ? सच बताओ कितनी इकन्नियां थीं और कितना क्या था ?

वह गुम-सुम खड़ा रहा, कुछ नहीं बोला !

"बोलते नहीं।"

वह नही बोला।

"सुनते हो ! बोलो···नही तो···"

आशुतोष डर गया । और कुछ नहीं बोला ।

"सुनते नही मैं क्या कह रहा हूं !"

इसपर भी वह नहीं बोला तो पकड़कर उसके कान खींच लिए । वह बिना आंसू लाए गुम-सुम खड़ा रहा ।

"अब भी नहीं बोलोगे ?"

वह डर के मारे पीला हो आया । लेकिन बोल नहीं सका । मैंने जोर से बुलाया, बसी यहां आओ, इसको ले जाकर कोठरी में बन्दकर दो ।"

बसी नौकर उसे उठाकर ले गया और कोठरी मे मूंद दिया ।

दस मिनट बाद मैंने फिर उसे पास बुलाया । उसका मुंह सूजा हुआ था । बिना कुछ बोले उसके होंठ हिल रहे थे । कोठरी में बंद होकर भी वह रोया नही ।

मैंने कहा, 'क्यों रे, अब तो अकल आई ?"

वह सुनता हुआ गुम-सुम खड़ा रहा ।

"अच्छा पतंगवाला कौन-सा है ? दायीं तरफ का वह चौराहे-वाला ?" उसने कुछ होंठों में ही बड़बड़ा दिया । जिसे मैं कुछ न समझ सका ।

"वह चौराहेवाला ? बोलो···"

"हां ।"

देखो अपने चाचा को साथ ले जाओ । बता देना कि कौनसा है । फिर उसे स्वयं भुगत लेंगे । समझते हो न ?"

यह कहकर मैंने अपने भाई को बुलाया । सब बात समझाकर कहा, "देखो पांच आने के पैसे ले जाओ । पहले तुम दूर रहना । आशुतोष पैसे ले जाकर उसे देगा और अपनी पाजेब मांगेगा । अव्वल तो वह पाजेब लौटा ही देगा । नही तो उसे डांटना और कहना कि तुझे पुलिस के सुपुर्द कर दूंगा । बच्चों से माल ठगता है ?समझे ? नरमी की जरूरत नहीं है ।"

"और आशुतोष अब जाओ, अपने चाचा के साथ जाओ।" वह अपनी जगह पर खड़ा था। सुनकर भी टस से मस होता दिखाई नही दिया।

"नही जाओगे ?"

उसने सिर हिला दिया कि नही जाऊगा।

मैंने तब उसे समझाकर कहा कि भैया घर की चीज है दाम लगे है। भला पाच आने मे रुपयों का माल किसी के हाथ खो दोगे। जाओ, चाचा के संग जाओ। तुम्हे कुछ नही कहना होगा। हां, पैसे दे देना और अपनी चीज वापस माग लेना। दे दे, नही दे नहीं दे। तुम्हारा इससे सरोकार नहीं। सच है न बेटे! अब जाओ।

पर वह जाने को तैयार नही दीखा। मुझे उस लड़के की गुस्ताखी पर बड़ा बुरा मालूम हुआ। बोलो, इसमे बात क्या है। इसमें मुश्किल कहां है? समझाकर बात कर रहे है सो समझता ही नहीं, सुनता ही नही।

मैंने कहा कि क्यो रे नही जाएगा ?

उसने फिर सिर हिला दिया कि नही जाऊंगा।

मैंने प्रकाश, अपने छोटे भाई को बुलाया। कहा, "प्रकाश, इसे पकड़कर ले जाओ।"

प्रकाश ने उसे पकड़ा और आशुतोष हाथ-पैरो से उसका प्रतिकार करने लगा। वह साथ जाना नही चाहता था।

मैंने अपने ऊपर बहुत जब्र करके फिर आशुतोष को पुचकारा, कहा कि जाओ भाई! डरो नहीं। अपनी चीज घर में आएगी। इतनी-सी बात समझते नही। प्रकाश, इसे गोदी मे ले जाओ और जो चीज मांगे उसे बाज़ार से दिलवा देना। जाओ भाई आशुतोष।

पर उसका मुह फूला हुआ था। जैसे-तैसे बहुत समझाने पर वह प्रकाश के साथ चला। ऐसा चला मानो पैर उठाना उसे भारी हो रहा है। आठ बरस का यह लड़का होने आया फिर भी देखो न कि किसी

भी बात की इसमे समझ नहीं है। मुझे जो गुस्सा आया तो क्या बतलाऊ। लेकिन यह याद करके कि गुस्से से बच्चे सभलने की जगह बिगड़ते हैं, मैं अपने को दबाता चला गया। खैर, वह गया तो मैंने चैन की सास ली।

लेकिन देखता क्या हूं कि कुछ देर मे प्रकाश लौट आया है।

मैंने पूछा "क्यों ?"

बोला कि आशुतोष भाग आया है।

मैंने कहा कि अब वह कहा है ?

"वह रूठा खडा है, घर मे नही आता।"

"जाओ, पकडकर तो लाओ।"

वह पकडा हुआ आया, मैंने कहा, "क्यो रे, तू शरारत से बाज नहीं आएगा ? बोल जाएगा कि नही ?"

वह नही बोला तो मैंने कसकर उसे दो चाटे दिए। थप्पड लगते ही वह एकदम चीखा पर फौरन चुप हो गया। वह वैसे ही मेरे सामने खडा रहा।

मैंने उसे देखकर मारे गुस्से के कहा कि ले जाओ इसे मेरे सामने से। जाकर कोठरी में बन्द कर दो। दुष्ट !

इस बार वह आध-एक घण्टे बन्द रहा। मुझे खयाल आया कि मैं ठीक नही कर रहा हू, लेकिन जैसे कि दूसरा रास्ता न दीखता था। मार-पीटकर मन को ठिकाना देने की आदत पड गई थी, और कुछ अभ्यास न था।

खैर, मैंने इस बीच प्रकाश को कहा कि तुम दोनो पतगवालों के पास जाओ। मालूम करना की किसने पाजेब ली है। होशियारी से मालूम करना। मालूम होने पर सख्ती करना। मुरव्वत की जरूरत नही। समझे ?

प्रकाश गया पर लौटने पर बताया कि किसीके पास पाजेब नहीं है।

सुनकर मैं झल्ला आया, कहा कि तुमसे कुछ काम नहीं हो सकता। जरा-सी बात नहीं हुई, तुमसे क्या उम्मीद रखी जाए!

वह अपनी सफाई देने लगा। मैंने कहा, "बस तुम जाओ।"

प्रकाश मेरा बहुत लिहाज मानता था। वह मुह डालकर चला गया। कोठरी खुलवाने पर आशुतोष को फर्श पर सोता पाया। उसके चेहरे पर अब भी आंसू नही थे। सच पूछो तो मुझे उस समय बालक पर करुणा हुई। लेकिन आदमी मे एक ही साथ जाने क्या-क्या विरोधी भाव उठते है।

मैंने उसे जगाया। वह हडबडाकर उठा। मैंने कहा, "कहो क्या हालत है?"

थोड़ी देर तक वह समझा ही नही। फिर शायद पिछला सिलसिला याद आया। झट उसके चेहरे पर वही जिद, अकड और प्रतिरोध के भाव दिखाई देने लगे।

मैंने कहा कि या तो राजी-राजी चले जाओ, नहीं तो इस कोठरी में फिर बन्द किए देते है।

आशुतोष पर इसका प्रभाव पडा हो ऐसा नही मालूम हुआ।

खैर, उसे पकडकर लाया और समझाने लगा। मैंने निकालकर उसे एक रुपया दिया और कहा, "बेटा इसे पतंगवाले को देना और पाजेब मांग लेना। कोई घबराने की बात नही। तुम तो समझदार लड़के हो।"

उसने कहा कि पाजेब जो उसके पास नहीं हुई तो वह कहा से देगा?

"इसका क्या मतलब, तुमने कहा न कि पांच आने मे पाजेब दी है! न हो छुन्नू को भी साथ ले लेना। समझे?"

वह चुप हो गया। आखिर समझाने पर जाने को तैयार हुआ। मैंने प्रेमपूर्वक उसे प्रकाश के साथ जाने को कहा। उसका मुह भारी देखकर डांटने ही वाला था कि इतने में सामने उसकी बूआ दिखाई दी।

बूआ ने आशुतोष के सिर पर हाथ रखकर पूछा कि कहां जा रहे हो, मैं तो तुम्हारे लिए केले और मिठाई लाई हूं।

आशुतोष का चेहरा रूठा ही रहा। मैंने बूआ से कहा कि उसे रोको मत, जाने दो।

आशुतो[illegible]को उद्यत था। वह चलने में आनाकानी दिखाने लगा।

बुआ ने पूछा, "क्या बात है।

मैंने कहा, "कोई बात नहीं, जाने दो उसे।"

पर आशुतोष मचलने पर आ गया था। मैंने डाटकर कहा, "प्रकाश, इसे ले क्यों नहीं जाते हो!"

बुआ ने कहा कि बात क्या है? क्या बात है?

मैंने पुकारा, "तू बंसी—भी साथ जा। बीच में लौटने न पाए।" सो मेरे आदेश पर दोनों आशुतोष को जबरदस्ती उठाकर सामने से ले गए।

बुआ ने कहा, "क्यों उसे सता रहे हो?"

मैंने कहा कि कुछ नहीं, जरा योंही—

फिर मैं उनके साथ इधर-उधर की बाते ले बैठा। राजनीति राष्ट्र की ही नहीं होती, मुहल्ले में भी राजनीति होती है। यह भार स्त्रियों पर टिकता है। कहां क्या हुआ, क्या होना चाहिए इत्यादि चर्चा स्त्रियों का लेकर रग फैलाती है। इसी प्रकार की कुछ बाते हुई, फिर छोटा-सा बक्सा सरकाकर बोली, इसमे वे कागज है, जो तुमने मागे थे। और यह—

यह कहकर उन्होंने अपनी वास्कट की जेब में हाथ डालकर पाजेब निकालकर सामने की, जैसे सामने बिच्छू हो। मैं भयभीत भाव से कह उठा कि यह क्या?

बोली कि उस रोज भूल से यह पाजेब मेरे साथ चली गई थी।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

आपका जन्म सन् १६०६ में पंजाब में हुआ। आपकी शिक्षा गुरुकुल विश्वविद्यालय, काँगड़ी में हुई। वहीं से विद्यालंकार की उपाधि प्राप्त की। गुरुकुल से निकलने के पश्चात् आपने साहित्य की ओर ध्यान दिया और लाहौर में आपने 'विश्व-साहित्य-ग्रन्थमाला' का प्रकाशन किया। देश-विभाजन के पश्चात् आप दिल्ली में आ गए और 'आजकल' पत्रिका के सम्पादक रहे। विद्यालंकारजी साहित्य के जागरूक सेवक हैं। आपका अध्ययन गहन है इसलिये आपका साहित्य प्रौढ़ और प्रांजल है। आप एक सफल कहानीकार हैं। आपने अनुवाद-कार्य भी किया है। आजकल आप 'सारिका' कहानी पत्रिका के सम्पादक हैं।

आपकी कहानियाँ उच्च कोटि की हैं। आपकी भाषा सरल, परिष्कृत और तत्सम-प्रधान है। शैली सुन्दर और प्रवाहपूर्ण है। आपने कहानी-कला में कुछ नये प्रयोग भी किये हैं जिनमें आपको पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। चन्द्रगुप्तजी अपने पात्रों के अन्तरतम में घुसकर कथा के घटना-क्रम को आगे बढ़ाते हैं। कहानी पढ़ते-पढ़ते ऐसा प्रतीत होने लगता है जैसे प्रत्येक दृश्य, प्रत्येक घटना, प्रत्येक व्यक्ति हमारे सामने खड़ा होकर यह सब कह-सुन रहा है। कहानी कहने की कला में आप प्रेमचन्द-स्कूल में आते हैं।

कामकाज

बाज़ार-भर मे तहलका मच गया। अधेड़ उम्र के एक सज्जन अपने एक नौजवान रिश्तेदार के सहारे अनारकली बाजार के बीचोबीच चले जा रहे थे। उनकी एक बाह बधी हुई थी, कपडे मैले हो गए थे और मालूम होता था कि बहुत दिनों से ये हजामत नहीं बना पाए है। इन सज्जन की आखों में इतनी गहरी निराशा और व्यथा का भाव स्पष्ट अकित था कि देखनेवाले सहम कर रह जाते थे। क्वेटा के भूकम्प से बचे हुए या आहत व्यक्तियो का पहला बैच आज लाहौर पहुचा था, और उनमें से सम्भवत यही एक सज्जन थे, जो पैदल चलने लायक बच रहे थे।

लाला कस्तूरीमल अपनी दुकान में खड़े होकर नए आनेवाले कपड़ो के नमूने की जाँच-पड़ताल कर रहे थे। उनकी निगाह दूर से आते हुए उस मातमी-से मजमे पर पड़ी ; मगर उन्होने उस ओर ध्यान नही दिया। दो-एक मिनट मे वे सज्जन लाला कस्तूरीमल की दुकान के सामने आ पहुचे और उन्होंने अपने साथ के नौजवान से कहा, "बेटा, मुझे दो-एक कपड़े न खरीद दोगे ?"

"मैं भी आपसे यही प्रार्थना करनेवाला था।" कहकर नवयुवक उन्हे लाला कस्तूरीमल की दुकान के भीतर ले गया। साथ का सारा मजमा दुकान के बाहर रुक गया।

लाला कस्तूरीमल की दुकान पर सेल्समैन की कमी नहीं है; मगर इन सज्जन की पोशाक मैली-कुचैली होते हुए भी आकृति में कुछ ऐसा

आकर्षण था कि लाला साहब ने आगे बढ़कर उनका स्वागत करते हुए पूछा, "कहिए क्या हुक्म है ?"

उन सज्जन ने धीरे से कहा, "कुछ धोतियां दिखाइएगा ?"

उसी वक्त एक आदमी को धोती लाने का हुक्म हो गया। सहसा लाला कस्तूरीमल को भी जैसे इलहाम-सा हो गया कि ये सज्जन कहां से आ रहे हैं। उन्होंने बड़ी नम्रता के साथ पूछा, "आप क्वेटा से आ रहे हैं ?"

"जी हां।"

लाला कस्तूरीमल की उत्सुकता अपनी चरमसीमा तक जा पहुंची। वे पिछले तीन दिनों में कम से कम बारह तार क्वेटा को दे चुके थे, और उनमें से एक का भी जवाब नहीं मिला था। उनके बहनोई अपने सम्पूर्ण परिवार सहित क्वेटा में ही रहते थे। और उनके सम्बन्ध में उन्हें अब तक कोई खबर नहीं मिली थी। धोतियों के एक नये आये हुए बंडल का धागा कैंची से काटते हुए उन्होंने जरा व्यग्र भाव से पूछा, "पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट के मि० मधुसूदन को आप जानते हैं ?"

उन वृद्ध सज्जन ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा, "जी हां।"

"उनके घरवालों को भी।"

"जी हां, खूब अच्छी तरह से।"

लाला कस्तूरीमल ने लाल किनारी की एक धोती उन सज्जन के सामने खोलकर दिखाते हुए पूछा, "यह नागपुर की धोती है।...... मि० मधुसूदन शायद उन दिनों दौरे पर थे ?"

"जी नहीं। २९ की रात को उन्हें दौरे के लिए रवाना होना था, मगर वे गए नहीं, दौरा उन्होंने अगले दिन के लिए मुल्तवी कर दिया था।"

एक और जोड़ा उन सज्जन के सामने फैलाते हुए लाला कस्तूरीमल ने कहा, "यह धोती धुलने के बाद बहुत हल्की हो जाती है। ठीक गरमियों के लायक। यह भी नागपुर की है। अच्छा तो वे दौरे पर नहीं गए ?"

"जी, नही जा सके।"

"मेरा कोई तार उन्हे नही मिला था ?"

"मुझे आपके साथ हार्दिक सहानुभूति है। मि० मधुसूदन अब इस दुनिया में नही रहे है।"

लाला कस्तूरीमल को उन वृद्ध सज्जन की बात पर जैसे रत्ती-भर भी विश्वास नही आया। धोतियो के ढेर मे से एक और जोड़ा निकालते हुए उन्होने कहा, "आप किन मधुसूदन की बात कर रहे है ?"

"उन्ही मधुसूदन की जिनकी पत्नी का नाम उर्मिला है जो पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट मे इंजीनियर थे और जिनकी कोठी बाबू मोहल्ले के दक्षिण किनारे पर सरकारी हाईस्कूल के खेलने के मैदान के नज़दीक थी।"

लाला कस्तूरीमल के चेहरे पर गहरे विषाद की रेखा साफ-साफ दीख पडी। डूबता हुआ व्यक्ति जिस तरह तिनके के आसरे को भी नही छोड़ना चाहता उसी तरह लाला कस्तूरीमल ने अपने अविश्वास को ज़बरदस्ती जमाए रखने की चेष्टा करते हुए कहा, "भूकम्प के बाद आप उनके यहां गए थे ?"

"नही जी।"

"फिर आपको कैसे मालूम कि वे नही बच पाए।"

"उनके छोटे भाई साहब की जबानी मालूम हुआ। आप बिना किनारे की भी कुछ धोतियां दिखलाइएगा ?"

"मदरासी धोतिया। कर्नाटक मिल। पांच-सात नये डिज़ाइन फेंको !" लालाजी ने अपने आदमियों को आवाज़ दी और उसके बाद कहा, "उनके भाई साहब मे ? क्या उन्होंने मधुसूदन का अतिम संस्कार किया था ?"

"जी नही ! उनकी देह मिली ही नहीं ! शायद कोठी की खुदाई करने पर कुछ पता चले।"

दक्षिण के छज्जे पर से पांच-सात धोतियों का एक ढेर इसी समय

लाला कस्तूरीमल के ठीक सामने आकर गिरा। उस उद्विग्नता में भी लाला साहब के हाथ अपनी सहज आदत से ग्राहक के सामने जोड़ा खोलकर दिखाने लगे, "यह कर्नाटक का माल है। कर्नाटक ने नागपुर को बड़ा धक्का पहुचाया है।" लाला साहब ने उन वृद्ध सज्जन के अत्यन्त गभीर बने हुए चेहरे की ओर देखते हुए कहा, "तो फिर क्या यह मुमकिन नही कि घर मे किसीको इत्तला दिए बिना ही वे दौरे पर चले गए हों।"

"नही जी। ऐसा नही हुआ। वे लोग रात को बहुत देर तक एक साथ ताश खेलते रहे थे।"

"ये धोतिया आप अवश्य पसन्द करेगे। हा, उर्मिला का क्या हाल है?"

"अस्पताल मे!" लाला कस्तूरीमल की सम्पूर्ण देह एक बारगी कांप उठी और क्षण-भर के लिए उनके दोनो हाथ धोतियों के ढेर पर मे उठ गए, "उनकी हालत कैसी है?"

"चोट तो उन्हे अधिक नहीं लगी, जितना पति और बच्चे के देहांत का सदमा पहुंचा है। आपको अवश्य ही स्वय क्वेटा जाकर उन्हे लाने का प्रबन्ध करना चाहिए, इस जोड़े की कीमत क्या है?"

"चार रुपया छ आना इसकी खरीद है। मै आपसे ज्यादा चार्ज नही करूगा। कुछ और भी नमूने दिखाऊ क्या?"

"आपकी मेहरबानी। बनी-बनाई कमीज भी तो आपके यहां होगी!"

"आप विदेशी कपड़ा तो नहीं पहनते न?"

"जी नहीं। मुझे स्वदेशी कपड़ा ही चाहिए।"

"हम खुद जहा तक बन पड़ता है, स्वदेशी माल ही बेचते है। आपने खुद उर्मिला को अस्पताल मे देखा था?"

"जी नहीं, यह भी मि० मधुसूदन के भाई साहब ने ही बताया था, मैं खुद चोट खा गया था, कही आ-जा न सका।"

"आप रेशमी कमीजे चाहते हैं या सूती? दोनों ही देख लीजिए,

रामलाल ३८ नम्बर की कमीजें लाना ।" और उस एक ही उ[illegible] भाग को अत्यधिक करुण और एकदम ठंडा बनाते हुए ला० कस्तूरीमल ने कहा, "तो क्या काशी भी इस दुनिया में नहीं रहा ?"

"मुझे इस बात का हार्दिक दुःख है कि ये दारुण समाचार मैं आपको दे रहा हूं ।" इस समय तक काउण्टर पर कमीजों का ढेर लग गया था। लाला कस्तूरीमल उस ढेर की कमीजें दिखाते हुए बोले, "ये मुर्शिदाबादी रेशम की कमीजे है, यह ढाका के रेशम की और यह काशी के रेशम की। मजबूती के लिहाज से यह काश्मीरी रेशम सबसे बढ़िया है। मगर यह इरसु का सूती कपड़ा सबको मात कर गया है। मिल ने हाल ही में कीमतें भी बहुत गिरा दी है ।" तब अपने हृदय के कुचले हुए अविश्वास को जबरदस्ती जगाकर कस्तूरीमल ने कहा, "मि० मधुसूदन के भाई तो चमन गए हुए थे ।"

"दो-एक दिन पहले ही वे क्वेटा पहुचे थे। उस रात वे बरामदे में सोए थे, इसीसे बच गए ।"

"इस कमीज की कीमत क्या है ?"

"तीन रुपया छ: आना। आपसे मै तीन ही लूगा ।"

"धन्यवाद ! इस वक्त मुझे और कुछ नही चाहिए ।"

इसी समय एक सम्भ्रांत महिला उस दुकान मे आई। लाला कस्तूरीमल अपने एक सहकारी को उन सज्जन के पास छोडकर स्वयं इस महिला की ओर बढ गए। उनके चेहरे पर इस समय हद दर्जे की उदासी छाई हुई थी, परन्तु उनकी तत्परता पर इस उदासी का कोई प्रभाव न पडने पाया था।

२

रावलपिण्डी जेल का सबसे अधि[illegible]कतवर और कठोर चौकीदार यूसुफ मजे-मजे मे ग्यारह का घण्टा बजा रहा था। सर्दियो का मौसम था और मध्याह्न सूर्य की हलकी-हलकी धूप बहुत भली प्रतीत हो रही थी। इसी समय जेल के बड़े फाटक के बाहर से आवाज आई, "तार ले लो ।"

ड्योढी मे कोई चौकीदार नही था. भीतर के सहन मे यूसुफ ने तारवाले की आवाज सुनी ; मगर उसने कोई परवाह न की। मजे-मजे मे अपनी मुर्गी अपनी जगह रखी और धीरे-धीरे फाटक की ओर बढा। तारवाला बहुत अधीर हो रहा था, परन्तु यूसुफ की डील-डौल देखकर उसे हिम्मत न हुई कि वह उसपर अपना रोब डालने का प्रयत्न करे। नजदीक आकर यूसुफ ने पूछा, "किसका तार है ?"

"यूसुफ जमादार का।"

अट्टहास करके यूसुफ हँस पडा। जेल-भर मे तो कोई यूसुफ है नही। बाकी रहा वह , सो उसका तार आ ही नही सकता। पिछले कई बरसो से जिस आदमी के पास एक चिट्ठी तक नही आई, उसका तार कहा से आ सकता है ? फिर उसे तार देगा ही कौन ? सरहद के जिस अफ्रीदी प्रान्त मे उसका मकान है, उसके पचास मील की परिधि तक मे एक भी डाकखाना या तार-घर नहीं। जी भरकर हँस लेने के बाद यूसुफ ने कहा, "कही गलती से कचहरी के यूसुफ का तार जेल के यूसुफ के पास तो नही ले आए ?"

मगर तार सचमुच उसीका था और बहुत शीघ्र ही उसे मालूम हो गया कि उसके ससुर साहब मरणासन्न है। मौत के बाद कोई भी व्यक्ति ठीक तौर से उन्हें दफना सकेगा, इस बारे मे उन्हे शक था, इसी से उन्होंने यूसुफ को बुलाने के लिए तार भिजवाया है।

इस जेल में चौकीदार नियुक्त हुए यूसुफ को पन्द्रह बरस बीत चुके है। इन पन्द्रह बरसो मे वह एक बार भी अपने देश को नही गया। कभी किसी बात के लिए एक दिन की छुट्टी भी नही ली। युवावस्था के प्रारम्भिक दिनो मे उस अशासित प्रांत मे अपने अनेक साथियो के साथ यूसुफ ने बीसो साहसिक कार्य किए है—डाके डाले हैं, चोरियां की है और छोटी-मोटी लड़ाइया भी लडी है। मगर उसके बाद जब यूसुफ का विवाह हो गया तो उसके ससुर-पक्ष का यह सबसे बडा उलाहना बन गया कि यूसुफ निठल्ला है—न वह खेती-बारी करता है, न वह

किसी गिरोह का सरदार है और न सरकार ही से कुछ पाता है। उन उलाहनों से तंग आकर वह अपने देश से भाग खड़ा हुआ और रावलपिण्डी में पहुंच-कर जेल में पहरेदार के पद पर नियुक्त हो गया था। पिछले पंद्रह बरसों में प्रति माह वह कम से कम दस रुपये अपने ससुर साहब के पास भेजता रहा है, मगर न तो खुद कभी उनसे मिलने के लिए गया और न उसने अपनी पत्नी को ही अपने पास बुलवाया।

अपने ससुर का तार पाकर सहसा यूसुफ को अपनी मातृभूमि की स्मृति हो आई। वजीरिस्तान के वे नंगे पहाड़, उन पहाड़ों पर चरती हुई भेड़े और उन भेड़ों के साथ-साथ स्वच्छ हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर पठान युवतियाँ। उन्ही सूखी-सी पहाड़ियों पर अंगूर पैदा होते है। उसी भूमि की मटियाली-सी सतह पर सरदे बिछे रहते है और कही किशमिश न्योजे और बादाम की बाहार आती है। वहां आजादी है, वहां वीरता है और सबसे बढकर वहां पुरुषत्व है। हां, यूसुफ का बहिश्त वहीं तो है।

और इसके साथ ही साथ उसे अपने ससुर की बीमारी का स्मरण हो आया। वह बीमार हो गया है। बुड्ढा है, चल बसेगा। एक दिन जाना ही तो था। इसमें न कोई अचम्भे की बात है, न चिन्ता की और न शोक की। मगर फिर भी उसने बुलाया है। और कौन उसे ठीक तौर से दफना सकेगा? यूसुफ को जाना ही चाहिए, वह जाएगा ही।

मातृभूमि की याद से एक विशेष प्रकार की स्निग्धता का भाव यूसुफ के चेहरे पर झलक उठा और पश्तो का एक गीत गुन-गुनाता जेलर साहब के दफ्तर की ओर बढ गया। यूसुफ के आने से पहले ही उसके तार की बात जेलर साहब को मालूम हो चुकी थी। एक मुस्कराहट के साथ उसकी ओर देखकर उन्होंने कहा, "क्यो यूसुफ, पन्द्रह साल का रेकार्ड तोड़कर छुट्टी लेना चाहते हो?"

यूसुफ ने कोई जवाब नही दिया।

जेलर साहब ने पूछा, "तुम्हारे ससुर की उम्र कितनी है?"

"छियत्तर साल।"

"अब भी तुम चाहते हो कि वहा पहुंचकर उसे बचाने की कोशिश करो ?"

यूसुफ चुप रहा।

जेलर ने अबकी बहुत ही गम्भीर बनकर कहा "कानून के मुताबिक यहा छः जमादारों का हर वक्त मौजूद रहना लाजिमी है। आठ जमादारों में से दो पहले ही छुट्टी पर है। इस हालत मे मैं तुम्हे छुट्टी किस तरह दे सकता हू ?"

यूसुफ ने कहा, "अलादीन की छुट्टी कल मजूर हो चुकी है, मगर वह गया नही है। मेरे कहने से वह अपनी छुट्टी मेरे हक मे बाद के लिए मन्सूख करवा लेगा। उसे कोई खास काम तो नहीं है।"

जेलर साहब ने कुछ चिढ़कर कहा, "तुम्हे कौन खास काम है ? ससुर को दफनाना है, यह भी कोई काम है !"

कठोर-हृदय यूसुफ ने सिर झुका लिया—जैसे वह पराजित हो गया हो, मगर जेल के क्लार्क ने उसकी मदद की। बोला, "वहा···शायद कोई जायदाद-वायदाद का सवाल हो।"

यूसुफ चीख उठा। वह अब बरदाश्त न कर सका। उसने कहा, "मैं किसी जायदाद के लालच मे नही अपने ससुर की खिदमत के खयाल से ही जाना चाहता हू।"

जेलर ने जरा ऊची आवाज मे कहा, "ससुर का भी कोई नाता होता है ! एक आदमी की लड़की ले ली इससे वह उम्र-भर के लिए रिश्तेदार हो गया ? यह भी कोई रिश्ता है ?"

जेल का क्लार्क मुंह मोड़कर हँसी छिपाने की कोशिश करने लगा। जेलर का लेक्चर अभी तक जारी था, "देखो यूसुफ, हिंदुस्तान-भर मे तुम्हारा यह रेकार्ड है कि तुमने अपनी पन्द्रह साल की सरकारी नौकरी में एक भी दिन की छुट्टी कभी नही ली। एक जरा-सी बात के पीछे तुम अपना वह शानदार रेकार्ड तोड़ डालना चाहते हो ?"

दानवकाय यूसुफ से जब और कुछ न बन पड़ा, तो उसकी आंखो

में आंसू भर आए। क्लार्क को अब उसपर सचमुच रहम आ गया। उसने कहा, "तो तुम जरूर छुट्टी लेना चाहते हो ?"

यूसुफ ने स्वीकृतिसूचक सिर हिला दिया।

क्लार्क ने जेलर से कहा, "वह छुट्टी लेना चाहता है। उसकी पूरी छुट्टी बाकी है। कानूनन हम लोग उसे छुट्टी न लेने के लिए मजबूर नहीं कर सकते।"

जेलर ने एक बार अपने क्लार्क की ओर अग्निमय दृष्टि से देखा परन्तु सहसा उन्हे उसी समय एक भूली बात का स्मरण हो आया। करीब दो माह बाद पेशावर के जेल इस्पेक्टर महोदय रावलपिण्डी नियुक्त होकर आनेवाले थे। जेलर ने उन्हे एक भेंट भेजने के लिए सेबो की एक पेटी का आर्डर दे रखा था। यह पेटी दो दिन बाद काश्मीर से आने वाली थी। क्यो न वह पेटी यूसुफ के हाथ ही पेशावर भेज दी जाए।

जेलर ने जैसे एक मिनट तक सोचते रहने के उपरान्त कहा "तुम पेशावर के रास्ते ही अपने गाव जाओगे न ?"

"जी हां।"

"तो तुम्हें दस दिनों की छुट्टी दे सकता हूं। मगर आज से नही दो दिन बाद से !"

यूसुफ ने नम्रता से कहा, "उनकी तो मालूम नही, वे कब चल बसे। आज रात को रवाना होकर भी जल्दी से जल्दी तीन दिन बाद ही वहां पहुच सकता हूं।"

जेलर ने कहा, "तुम्हारी छुट्टी मजूर होने मे दो दिन अवश्य ही लग जाएगे।"

यूसुफ और क्लार्क दोनों ने हैरानी के साथ जेलर साहब की ओर देखा। उन दोनों के लिए यह बात अभूतपूर्व थी। क्लार्क ने कहा, "दरख्वास्त पर आप ही के दस्तखत काफी नहीं है क्या ?"

अपनी कमीनगी पर मुस्कराहट का परदा डालते हुए जेलर ने कहा,

"यार तुम्हें मेरी सेबों की एक पेटी पेशावर तक अपने साथ ले जानी होगी। वह पेटी परसों से पहले यहां नहीं पहुंच सकती है।"

जेलर साहब का यह काम इतना अधिक महत्त्वपूर्ण था कि बेचारा यूसुफ आज ही रवाना हो जाने के लिए और अधिक आग्रह न कर सका।

३ देसराज

साइकिल के पैडिलों पर तेजी के साथ पैर मारता हुआ देसराज बैंक की ओर चला जा रहा था। इस समय बारह बजकर पचीस मिनट हुए हैं और आज शनिवार है। एक बजे के बाद बैंक से लेन-देन न हो सकेगा। देसराज की जेब में पांच सौ रुपये के नोट पड़े हैं। बैंक में जाकर उसे अपने मालिक की एक रेलवे रसीद छुड़ानी है।

सड़क गोलबाग में होकर जहां मालरोड की ओर घूमती है, वहां देसराज के मार्ग में सहसा एक बाधा आ खड़ी हुई। सड़क के किनारे बीस-पच्चीस आदमी जमा थे। देसराज की साइकिल जब वहां पहुंची, तो दो-तीन आदमियों ने हाथ बढ़ाकर उससे कहा, "बाबूजी, जरा ठहरिए।"

देसराज को रुकना पड़ा। पूछने पर मालूम हुआ कि राह चलते-चलते एक आदमी को गश आ गया है। इसे क्या बीमारी है, यह किसी को नहीं मालूम, मगर बेहोशी की दशा में भी अत्यधिक व्याकुल और क्षीण स्वर में वह बार-बार पुकार उठता है, "पानी! पानी!!"

मगर आसपास कहीं पानी नहीं है।

एक ठेलेवाले ने देसराज से कहा, "बाबूजी, यहां से थोड़ी दूर पर यूनिवर्सिटी के लड़कों का क्लब है। यदि आप साइकिल पर वहां जाकर एक लोटा पानी ला सकें तो इस बेचारे की जान बच जाए।"

देसराज ने पूछा, "यहां यह कब से पड़ा है?"

किसी ने बताया, "करीब पन्द्रह मिनट से।"

देसराज ने दूसरा सवाल किया, "इसे क्या बीमारी है?"

एक मुसाफिर ने जरा झुझलाकर कहा, "हम लोगों में से कोई डाक्टर तो है ही नहीं! जो कुछ है, वह आपके सामने है!"

देसराज शायद इस बात पर खीज उठता, परन्तु उसी समय उसी ठेलेवाले ने बड़ी नम्रता के साथ कहा, "बाबू साहब, यहां इस आदमी का अपना सगा कोई भी नहीं है। यदि दो-चार मिनट में आप साइकिल पर जाकर कहीं से पानी ला दे सकते, तो उसके बाद मैं अपने ठेले पर लिटाकर इसे अस्पताल तक छोड आता। आप साहब है, आपको मांगने पर पानी भी मिल जाएगा, मगर हम गरीबों को इन बड़ी-बडी इमारतों में कोई घुसने भी नही देगा।"

देसराज के जी मे सचमुच दया का सचार हो आया। वह खुद भी एक गरीब बाबू है—ऐसा गरीब बाबू, जिसे अपने जीवन-निर्वाह मे इन ठेलेवाले और झल्लीवाले मजदूरों मे भी बढकर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसका मालिक उसे दिन मे बारह घण्टे और चार सप्ताहों मे सत्ताइस दिन (क्योंकि उसकी दुकान महीने मे एक ही दिन बन्द होती है) कसकर काम लेता है, तब जाकर उसे तीस रुपया मासिक वेतन मिलता है। वह भी यदि गरीबों के दुख-दर्द और उनकी असहाय अवस्था को नही समझेगा; तो और कौन समझेगा? वह देख रहा था कि कालेज के विद्यार्थियों की साइकिल और अमीरों की कारें काफी संख्या में उसी सडक पर से होकर इधर-उधर निकल जाती है, किसीको इस ओर ध्यान देने की फुरसत नहीं है। मगर उसी समय उसकी निगाह अपनी घडी पर पडी। बारह बजकर तैंतीस मिनट हो चुके है। पन्द्रह मिनट के बाद बैंक मे न तो रुपये ही जमा कराए जा सकेंगे और न रेलवे रसीद ही ली जा सकेगी। कल रविवार है। माल मिलने मे दो दिन की देर हो जाएगी, और वह स्वतन्त्र नहीं है।

हृदय की सम्पूर्ण भावुकता को कुचलकर देसराज साइकिल पर सवार हो गया और कुछ आगे बढकर वह कहता गया, "बीस-पच्चीस मिनट में वापस आता हूं।"

बैंक से अपना काम समाप्त करके देसराज जब गोलबाग के नजदीक पहुंचा तो उसने देखा कि वहां तमाशबीनों की भीड़ इतनी बढ़ गई कि सड़क पर राह मिलना भी कठिन है।

देसराज साइकिल से उतर पड़ा और पास ही खड़े हुए एक आदमी से उसने पूछा, "क्या बात है ?"

उसने बताया, "कुछ नहीं, कोई मुसाफिर राह चलते सड़क पर गिरकर मर गया है और पुलिस उसकी लाश लेने आई है।"

देसराज ने एक ठण्डी सांस ली और धीरे-धीरे उस भीड़ को पार करके पुनः साइकिल पर सवार हो गया। पाच सौ रुपयों की पोमेड वेसलीन के पारसल की अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रेलवे-रसीद अब उसकी जेब में पड़ी थी।

वृन्दावनलाल वर्मा

श्री वृन्दावनलाल वर्मा का जन्म उत्तरप्रदेश के झांसी नगर में हुआ। वर्माजी हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में मूर्धन्य पद पर आसीन हैं। विगत तीस वर्ष में आपने छोटे-बड़े लगभग डेढ़ दर्जन उपन्यास, आधा दर्जन नाटक और पचासों कहानिया लिखी है। हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यास का यथार्थ रूप आपके ही उपन्यासों द्वारा प्राप्त हुआ है।

वर्माजी की कहानी-कला की विशेषता है—सरल और सुबोध शैली तथा वातावरण की पार्श्वभूमि में तथ्यों का चित्रण। वर्माजी भाषा मे कृत्रिमता को सदा दूर रखकर ही लिखते हैं। ऐतिहासिक कहानियों में आप सदा देश-काल का ध्यान रखते है और सम्बद्ध देश-काल का ऐसा सजीव वर्णन करते है कि अतीत का समस्त वातावरण शब्दों के माध्यम से ही नयनों के सामने उपस्थित हो जाता है। वर्माजी कथा-साहित्य द्वारा अतीत के अनेक युगों को पुनरुज्जीवित करने में सफल हुए हैं। बुन्देलखण्ड का प्राचीन इतिवृत्त आपके अनेक उपन्यासों मे तथा कहानियो मे वर्णित हुआ है। उसे पढकर सहज ही में पाठक उस भू-भाग की प्राचीन स्थिति का अनुमान कर सकता है।

आपकी लेखनी अभी पूरे वेग और बल के साथ रचना करने में लीन है। प्रतिवर्ष आप दो-एक नूतन कृतियां हिन्दी-संसार को भेंट करते है। सम्प्रति आप झाँसी मे ही रहकर स्वतन्त्र लेखन में व्यस्त हैं।

११

शरणागत

१

रज्जब जब अपना रोज़गार करके ललितपुर लौट रहा था, साथ मे स्त्री थी, और गाठ में दो-तीन सौ की बड़ी रकम। मार्ग बीहड़ था, और सुनसान ! ललितपुर काफी दूर था, बसेरा कहीं न कहीं लेना ही था, इसलिए उसने मडपुरा नामक गांव में ठहर जाने का निश्चय किया। उसकी पत्नी को बुखार आया था, रकम पास में थी और बैलगाड़ी किराये पर करने मे खर्चा ज्यादा पड़ता, इसलिए रज्जब ने उस रात आराम कर लेना ही ठीक समझा।

परन्तु ठहरता कहां ? जाति छिपाने से काम नही चल सकता था। उसकी पत्नी नाक और कानों में चांदी की बालियां डाले थी, और पाजामा पहने थी। इसके सिवाय गांव के बहुत-से लोग उसको पहचानते भी थे। वह उस गांव के बहुत-से कर्मण्य और अकर्मण्य ढोर खरीदकर ले जा चुका था।

अपने व्यवहारियों से उसने रात-भर बसेरे के लायक स्थान की याचना की। किसीने भी मजूर न किया। इन लोगों ने अपने ढोर रज्जब को अलग-अलग और लुके-छिपे बेचे थे। ठहराने में तुरन्त ही तरह-तरह की खबरें फैलतीं इसलिए सबोंने इन्कार कर दिया।

गांव में एक गरीब ठाकुर रहता था। थोड़ी-सी ज़मीन थी, जिसको किसान जोते हुए थे। निज का हल-बैल कुछ भी न था। लेकिन अपने किसानों से दो-तीन साल का पेशगी लगान वसूल कर लेने में ठाकुर को

किसी विशेष बाधा का सामना नहीं करना पड़ता था। छोटा-सा मकान था, परन्तु उसको गांववाले 'गढ़ी' के आदरव्यंजक शब्द से पुकारा करते थे, और ठाकुर को डरके मारे 'राजा' शब्द से सम्बोधित करते थे।

शामत का मारा रज्जब इसी ठाकुर के दरवाज़े पर अपनी ज्वरग्रस्त पत्नी को लेकर पहुंचा।

ठाकुर पौर में बैठा हुक्का पी रहा था। रज्जब ने बाहर से ही सलाम करके कहा, "दाऊजू, एक विनती है।"

ठाकुर ने बिना रत्ती-भर इधर-उधर हिले-डुले पूछा, "क्या ?"

रज्जब बोला, "मैं दूर से आ रहा हूं। बहुत थका हुआ हूं। मेरी औरत को ज़ोर से बुखार आ गया है। जाड़े में बाहर रहने से न जाने इसकी क्या हालत हो जाएगी। इसलिए रातभर के लिए कहीं दो हाथ जगह दे दी जाए।"

"कौन लोग हो ?" ठाकुर ने प्रश्न किया।

"हूं तो कसाई।" रज्जब ने सीधा उत्तर दिया। चेहरे पर उसके बहुत गिड़गिड़ाहट थी।

ठाकुर की बड़ी आंखों में कठोरता छा गई। बोला, "जानता है, यह किसका घर है ? यहां तक आने की हिम्मत कैसे की तूने ?"

रज्जब ने आशा-भरे स्वर में कहा, "यह राजा का घर है। इसी-लिए शरण में आया हूं !"

तुरन्त ठाकुर की आंखों की कठोरता गायब हो गई। ज़रा नरम स्वर में बोला, "किसीने तुमको बसेरा नहीं दिया ?"

"नहीं महाराज !" रज्जब ने उत्तर दिया, "बहुत कोशिश की, परन्तु मेरे खोटे पेशे के कारण कोई सीधा नहीं हुआ।" और वह दरवाज़े के बाहर ही एक कोने से चिपटकर बैठ गया। पीछे उसकी पत्नी कराहती, कांपती हुई गठरी-सी बनकर सिमट गई।

ठाकुर ने कहा, "तुम अपनी चिलम लिए हो।"

"हां सरकार !" रज्जब ने उत्तर दिया।

ठाकुर बोला, "तब भीतर आ जाओ, और तमाखू अपनी चिलम से पी लो। अपनी औरत को भी भीतर कर लो। हमारी पौर के एक कोने में पड़े रहना।"

जब वे दोनों भीतर आ गए, ठाकुर ने पूछा, "तुम कब यहां से उठकर चले जाओगे ?" जवाब मिला, "अन्धेरे में ही महाराज ! खाने के लिए रोटियां बांधे हूं, इसलिए पकाने की जरूरत न पड़ेगी।"

"तुम्हारा नाम ?"

"रज्जब।"

२

थोड़ी देर बाद ठाकुर ने रज्जब से पूछा, "कहां से आ रहे हो ?"

रज्जब ने स्थान का नाम बतलाया।

"वहां किसलिए गए थे ?"

"अपने रोजगार के लिए।"

"काम तो तुम्हारा बहुत बुरा है।"

"क्या करूं, पेट के लिए करना ही पड़ता है। परमात्मा ने जिसके लिए जो रोजगार मुकर्रर किया है, वही उसको करना पड़ता है।"

'क्या नफा हुआ ?" प्रश्न करने में ठाकुर को जरा संकोच हुआ और प्रश्न का उत्तर देने में रज्जब को उससे बढ़कर।

रज्जब ने जवाब दिया, "महाराज, पेट के लायक कुछ मिल गया है यों ही।" ठाकुर ने इसपर कोई जिद नहीं की।

रज्जब ने कहा, "बड़े भोर उठकर चला जाऊंगा। तब तक घर-वाली की तबीयत भी अच्छी हो जाएगी।"

इसके बाद दिन-भर के थके हुए पति-पत्नी सो गए। काफी रात गए कुछ लोगों ने एक बंधे इशारे से ठाकुर को बाहर बुलाया। एक फटी-सी रजाई ओढ़े ठाकुर बाहर निकल आया।

आगन्तुकों में से एक ने धीरे से कहा, "दाऊजी, आज तो खाली हाथ लौटे हैं। कल संध्या का सगुन बैठा है।"

ठाकुर ने कहा, "आज जरूरत थी। खैर, कल देखा जाएगा। क्या कोई उपाय किया था?"

"हां," आगन्तुक बोला, "एक कसाई रुपये की मोट बाधे इसी ओर आया है। परन्तु हम लोग जरा देर मे पहुंचे। वह खिसक गया। कल देखेंगे जरा जल्दी।"

ठाकुर ने घृणासूचक स्वर मे कहा, "कसाई का पैसा न छुएंगे।"

"क्यों?"

"बुरी कमाई है।"

"उसके रुपयों पर कसाई थोड़े ही लिखा है?"

"परन्तु उसके व्यवसाय से वह रुपया दूषित हो गया है।"

"रुपया तो दूसरो का ही है। कसाई के हाथ मे आने से रुपया कसाई नहीं हुआ।"

"मेरा मन नही मानता, वह अशुद्ध है।"

"हम अपनी तलवार से उसको शुद्ध कर लेंगे।"

ज्यादा बहस नही हुई। ठाकुर ने कुछ सोचकर अपने साथियों को बाहर का बाहर ही टाल दिया।

भीतर देखा, कसाई सो रहा था, और उसकी पत्नी भी। ठाकुर भी सो गया।

३

सवेरा हो गया परन्तु रज्जब न जा सका। उसकी पत्नी का बुखार तो हलका हो गया था, परन्तु शरीर-भर मे पीड़ा थी, और वह एक कदम भी नही चल सकती थी।

ठाकुर उसे वही ठहरा हुआ देखकर कुपित हो गया। रज्जब से बोला, "मैंने खूब मेहमान इकट्ठे किए है। गाव-भर थोडी देर मे तुम लोगों को मेरी पौर में टिका हुआ देखकर तरह-तरह की बकवास करेगा। तुम बाहर जाओ। इसी समय।"

रज्जब ने बहुत विनती की, परन्तु ठाकुर न माना। यद्यपि गाव-

भर उसके दबदबे को मानता था, परन्तु अव्यक्त लोकमत का दबदबा उसके मन पर था। इसलिए रज्जब गांव के बाहर सपत्नीक एक पेड के नीचे जा बैठा और हिन्दू-मात्र को मन ही मन में कोसने लगा।

उसे आशा थी कि पहर आधा पहर मे उसकी पत्नी की तबीयत इतनी स्वस्थ हो जाएगी कि वह पैदल यात्रा कर सकेगी। परन्तु ऐसा न हुआ, तब उसने एक गाडी किराये पर कर लेने का निर्णय किया।

मुश्किल से एक चमार काफी किराया लेकर ललितपुर गाड़ी ले जाने के लिए राज़ी हुआ। इतने में दोपहर हो गई। उसकी पत्नी को ज़ोर का बुखार हो आया। वह जाडे के मारे थरथर काप रही थी, इतनी कि रज्जब की हिम्मत उसी समय ले जाने की न पडी। गाडी में अधिक हवा लगने के भय से रज्जब ने उस समय तक के लिए यात्रा को स्थगित कर दिया, जब तक कि उस बेचारी की कम से कम कपकंपी बन्द न हो जाए।

घंटे डेढ़ घंटे बाद उसकी कपकपी बन्द हो गई, परन्तु ज्वर बहुत तेज़ हो गया। रज्जब ने अपनी पत्नी को गाड़ी में डाल दिया, और गाड़ीवान से जल्दी चलने को कहा।

गाड़ीवान बोला, "दिन-भर तो यहीं लगा दिया। अब जल्दी चलने को कहते हो!"

रज्जब ने मिठास के स्वर मे उससे फिर जल्दी करने के लिए कहा।

वह बोला, "इतने किराये में काम नहीं चल सकेगा। अपना रुपया वापस लो। मैं तो घर जाता हूं।"

रज्जब ने दांत पीसे। कुछ क्षण चुप रहा। सचेत होकर कहने लगा, "भाई, आफत सबके ऊपर आती है। मनुष्य मनुष्य को सहारा देता है, जानवर तो देते नहीं। तुम्हारे भी बाल-बच्चे है। कुछ दया के साथ काम लो।"

कसाई को दया पर व्याख्यान देते सुनकर गाड़ीवान को हंसी आ गई।

उसको टस से मस न होता देखकर रज्जब ने और पैसे दिए। तब

. न गाड़ी हांकी ।

४

पांच-छः मील चलने के बाद सन्ध्या हो गई । गांव कोई पास में न था । रज्जब की गाडी धीरे-धीरे चली जा रही थी । उसकी पत्नी बुखार में बेहोश-सी थी । रज्जब ने अपनी कमर टटोली । रकम सुरक्षित बधी पड़ी थी ।

रज्जब को स्मरण हो आया कि पत्नी के बुखार के कारण अटी का कुछ बोझ कम कर देना पडा है—और स्मरण हो आया गाडीवान का नहं हठ, जिसके कारण उसको कुछ पैसे व्यर्थ ही और देने पड़े थे । इससे गाडीवान पर क्रोध था, परन्तु उसके प्रकट करने की उस समय उसके मन में इच्छा न थी ।

बातचीत करके रास्ता काटने की कामना से उसने वार्तालाप प्रारम्भ किया

गांव तो यहां से दूर मिलेगा ।"

"बहुत दूर, वहीं ठहरेंगे ।"

"किसके यहा ?"

किसीके यहां भी नही । पेड के नीचे । कल सवेरे ललितपुर चलेंगे ।"

"कल का फिर पैसा माग उठना ।"

"कैसे मांग उठूगा ? किराया ले चुका हूं । अब फिर कैसे, मागूगा ।"

"जैसे आज गाव में हठ करके मांगा था । बेटा, ललितपुर होता तो बतला देता !"

"क्या बतला देते ? क्या सेत-मेत की गाडी मे बैठना चाहते थे ?"

"क्यों बे, क्या रुपये देकर भी सेत-मेत का बैठना कहलाता है ? जानता है, मेरा नाम रज्जब है । अगर बीच में गड़बड़ करेगा तो साले को यहां छुरे से काटकर कहीं फेंक दूगा, और गाड़ी लेकर ललितपुर चल दूगा ।"

रज्जब क्रोध को प्रकट नही करना चाहता था, परन्तु शायद अकारण

वह भली भांति प्रकट हो गया।

गाड़ीवान ने इधर-उधर देखा, अंधेरा हो गया था। चारो ओर सुनसान था। आसपास झाडी खडी थी। ऐसा जान पडता था, कही से कोई अब निकला, अब निकला। रज्जब की बात सुनकर उसकी हड्डी काप गई। ऐसा जान पडा, मानो पसलियों को उसकी ठडी छुरी छू रही हो।

गाडीवान चुपचाप बैलो को हाकने लगा। उसने सोचा, 'गाव के आते ही गाडी छोड़कर नीचे खड़ा हो जाऊगा, और हल्लागुल्ला करके गांववालों की मदद से अपना पीछा रज्जब से छुड़ाऊगा। रुपये-पैसे भले ही वापस कर दूगा, परन्तु और आगे न जाऊगा। कही सचमुच मार्ग मे मार न डाले!'

५

गाडी थोड़ी दूर और चली होगी कि बैल ठिठककर खडे हो गए। रज्जब सामने न देख रहा था, इसलिए जरा कड़ककर गाडीवान से बोला, "क्यो बे बदमाश, सो गया क्या?"

अधिक कडक के साथ सामने रास्ते पर खडी हुई एक टुकड़ी मे से किसीके कठोर कण्ठ से निकला, "खबरदार, जो आगे बढ़ा!"

रज्जब ने सामने देखा कि चार-पाच आदमी बडे-बड़े लट्ठ बाधकर न जाने कहा से आ गए है। उनमे से तुरन्त ही एक ने बैलो की जुआरी पर एक लट्ठा पटका और दो दाये-बाये आकर रज्जब पर आक्रमण करने को तैयार हो गए।

गाडीवान गाड़ी छोडकर नीचे जा खडा हुआ। बोला, "मालिक, मै तो गाड़ीवान हू। मुझे कोई सरोकार नही।"

"यह कौन है?" एक ने गरजकर पूछा।

गाड़ीवान की घिग्घी बंध गई। उत्तर न दे सका।

रज्जब ने कमर की गांठ को एक हाथ से सभालते हुए बहुत ही विनम्र स्वर में कहा, "मैं बहुत ही गरीब आदमी हू। मेरे पास कुछ नही

है। मेरी औरत गाड़ी में बीमार पड़ी है। मुझे जाने दीजिए।"

उन लोगों में से एक ने रज्जब के सिर पर लाठी उबारी। गाड़ीवान खिसकना चाहता था कि दूसरे ने उसको पकड़ लिया।

अब उसका मुह खुला। बोला, "महाराज, मुझको छोड़ दो। मैं तो किराये से गाड़ी लिए जा रहा हू। गाठ में खाने के लिए तीन-चार आने पैसे ही हैं।"

"और यह कौन है? बतला।" उन लोगों में से एक ने पूछा।

गाड़ीवान ने तुरन्त उत्तर दिया, "ललितपुर का एक कसाई।"

रज्जब के सिर पर जो लाठी उबारी गई थी, वह वहीं रह गई। लाठीवाले के मुह से निकला, "तुम कसाई हो? सच बतलाओ।"

"हा महाराज!" रज्जब ने सहसा उत्तर दिया, "मैं बहुत गरीब हू। हाथ जोड़ता हू, मुझको मत सताओ। मेरी औरत बहुत बीमार है।"

औरत जोर से कराही।

लाठीवाले उस आदमी ने एक साथी से कान में कहा, "इसका नाम रज्जब है। छोड़ो, चलें यहा से।"

उसने न माना बोला, "इसका खोपड़ा चकनाचूर करो दाऊजू, यदि वैसे न माने तो। कसाई-असाई हम कुछ नहीं मानते।"

"छोड़ना ही पड़ेगा!" उसने कहा, "इसपर हाथ नहीं पसारेंगे और न इसका पैसा छुएंगे।"

दूसरा बोला, "क्या कसाई होने के डर से? दाऊजू आज तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर पड़ गए हैं, मैं देखता हू।" और वह तुरन्त लाठी लेकर गाड़ी में चढ़ गया। लाठी का एक सिरा रज्जब की छाती में अड़ाकर उसने तुरन्त रुपया-पैसा निकालकर दे देने का हुक्म दिया। नीचे खड़े हुए उस व्यक्ति ने जरा तीव्र स्वर में कहा, "नीचे उतर आओ। उससे मत बोलो। उसकी औरत बीमार है।"

"हो मेरी बला से।" गाड़ी में चढ़े हुए लठैत ने उत्तर दिया, "मैं कसाइयों की दवा हूं।" और उसने रज्जब को फिर धमकी दी।

नीचे खड़े हुए व्यक्ति ने कहा, "खबरदार, जो उसे छुआ ! नीचे उतरो, नहीं तो तुम्हारा सिर चूर किए देता हूं। वह मेरी शरण में आया था।"

गाड़ीवाला लठैत झख-सी मारकार, नीचे उतर आया।

नीचेवाले व्यक्ति ने कहा, "सब लोग अपने-अपने घर जाओ। राह-गीरों को तग मत करो।" फिर गाड़ीवान से बोला, "जा रे, हाँक ले जा गाड़ी। ठिकाने तक पहुंचा आना, तब लौटना, नहीं तो अपनी खैर मत समझियो। और, तुम दोनों मे से किसीने भी कभी इस बात की चर्चा कही की, तो भूसी की आग में जला कर खाक कर दूगा।"

गाड़ीवान गाड़ी लेकर बढ़ गया। उन लोगों में मे जिस आदमी ने गाड़ी में चढ़कर रज्जब के सिर पर लाठी तानी थी, उसने क्षुब्ध स्वर में कहा, "दाऊजू, आगे से कभी आपके साथ न आऊंगा।"

दाऊजू ने कहा, "न आना। मैं अकेला ही बहुत कर गुज़रता हू। परन्तु बुन्देला शरणागत के साथ घात नही करता, इस बात को गांठ बांध लेना।"

राधाकृष्ण

श्री राधाकृष्णजी का जन्म १९१२ में राची ज़िले में हुआ था। स्कूली शिक्षा साधारण ही हुई, पर उस अभाव की पूर्ति आपने अध्ययन से कर ली। जो कसर रह गई वह जीवन-संघर्ष की पाठशाला में पूरी हो गई।

लिखने का चाव आपको बचपने से ही है। पहले 'घोष, बोस, बनर्जी, चटर्जी' नाम से हास्य-व्यंग्य काथाएँ लिखते रहे। आपकी गभीर कहानियां भी बहुत मार्मिक बन पड़ी हैं। आपने उपन्यास और नाटक भी लिखे हैं।

स्वभाव से सरल, वादों और विवादों से दूर, देव और मानव के प्रति आस्थावान।

आजकल राँची में रहते हैं और वहीं से प्रकाशित पत्रिका 'आदिवासी' के सम्पादक हैं।

१२

रामलीला

पेशे मे कोई पेशा हुआ भी नो रामलीला का दल रखने का पेशा हुआ। दुकानदारी का पेशा होता, जमींदारी होती, महाजनी होती, कोई भी, कैसा भी पेशा होता, तो एक बात थी ; मगर रामलीला का दल रखने का पेशा---सो भी यह खानदानी पेशा है। सात पुश्तों मे रामलीला का दल चला आता है। और रामरतन, जरा आधुनिक बुद्धि का आदमी है, सो अपने इस पेशे को पसन्द नहीं करता। मगर खानदानी चीज है। रामलीला वह छोड नही सकता, अपना दल तोड़ नही सकता।

मगर ये जो ऐरा-गैरा नत्थू-खैरा आकर राम बनते है, लक्ष्मण बनते है, वशिष्ठ और विश्वामित्र बन जाते है, सो रामरतन को पसन्द नही। यह इस प्रकार राम की पैरोडी हो जाती है, लक्ष्मण का उपहास हो जाता है, राजा दशरथ की मिट्टी पलीद हो जाती है, और महाज्ञानी वशिष्ठ के मुह मे ज्ञान के बदले अज्ञान ही ज्यादा निकलता है। सो रामरतन रामलीला के इस पुराने ढर्रे में परिवर्तन करेगा।

और, वह रामरतन पांच दिन मे परेशान है। वह कोई ऐसा बालक खोज रहा है, जो राम का पार्ट करे। वह किसी ऐसे ही सांवले-सलोने बालक की खोज मे घूम रहा है। तमाम ढूढ आया लेकिन रामरतन को ऐसा बालक नहीं मिलता। जो देखने मे आते है, वे जी को जचते नहीं। सबमें एक-दो त्रुटिया अवश्य आगे आ जाती है। वैसा मनचाहा बालक नही मिलता। न जाने मिलेगा भी या नही मिलेगा। पांचवें दिन राम-रतन निराश हो गया। जब राम ही नहीं, तो रामलीला भी नहीं। वह

थक गया, शरीर से भी, मन मे भी। उसे लगा कि जैसे वह कूडे के अन्दर शालिग्राम ढूढ रहा है। भला कहा मिलेगा ? उसे लगा कि इस इतनी बड़ी धरती पर वह सबसे ज्यादा लाचार प्राणी है। उसकी परेशानी मे कोई उसका सहारा नही हो सकता। भला यह रामलीला का दल क्या हुआ कि परेशानी का भण्डार हो गया। वह थककर पार्क की एक बेंच पर बैठ गया। अगर राम का काम करनेवाला बालक नहीं मिला, तो फिर रामलीला कैसे होगी ?

कि वह देखता है कि एक वैसा ही अबोध, वैसा ही भोला, निर्मल-निश्छल, सावला-सलोना बालक पार्क मे तितलियों के पीछे दौड रहा है। कौन लडका है ? किसका लडका है ? अगर यह राम का पार्ट करे तब तो फिर कुछ कहना ही नही।

उसने बालक को बुलाया। अपने पास बिठाकर उससे तरह-तरह की बाते पूछने लगा। लडके ने कहा "मेरे पिता नही, मेरी माँ है। वह क्या करती है, सो मैं नही जानता। हमारे घर मे तीन गाये है। मा उनका दूध दूहती है। एक ग्वाला आकर उसका दाम दे जाता है। हमारे एक मामा है, सो बड़ी दूर रहते है। रगून कहा है, जानते हो ? हमारे मामा वही नौकरी करते है। जब वे आएगे, तो मेरे लिए एक दोना मिठाई लाएगे और एक रबर की गेद लाएगे। वे मेरे लिए कोट सिला देगे और हाफपैंट खरीद देगे। फिर कोई तकलीफ नही रहेगी।"

इस बालक को पाकर रामरतन ने मानो आसमान का चाद पा लिया। राम के लायक ऐसा बालक पाना असम्भव था। थोडी देर के बाद वह उस बालक को मा के सामने खडा था और उसकी शकाओ का समाधान कर रहा था। उसकी मा को जो हिचक थी, सो रुपयो की आवाज़ सुनते ही मिट गई।

रामरतन ने बालक से पूछा, "क्यो भाई, राम का पार्ट करोगे न ?"

"करूगा !" बालक ने सरलता से जवाब दिया।

"तीर चलाकर तुम ताड़का को कैसे मारोगे ?"

बालक ने छोटी-सी धनुही से तीर का ऐसा सन्धान किया कि राम-रतन खुशी से निहाल हो उठा। ऐसा बढिया बालक कभी नहीं मिलेगा, कहीं नहीं मिलेगा। यह बालक राम का प्रतिरूप है। राम का अभिनय इसके पास आकर सत्य और साकार हो उठा है।

और दूसरे दिन से ही रामलीला मे दर्शकों की भीड़ तिगुनी-चौगनी होने लगी। वह बालक राम के रूप और अभिनय को सार्थक कर रहा था।

फिर बाईस वर्ष व्यतीत हो गए। इतने दिनो की बड़ी लम्बी, अनेकानेक कहानियां हैं। रामरतन की रामलीला-पार्टी आज भारतवर्ष में विख्यात है। पार्टी के पास धन है, सम्मान है, प्रतिष्ठा है। मगर फिर भी रामरतन को शांति नहीं। अब उसकी पार्टी ग्वालियर मे आई है। महाराज ने खास तौर पर उसकी रामलीला-पार्टी को निमन्त्रण दिया। लोग उत्सुक हैं। मगर रामरतन जान-बूझकर पन्द्रह दिनो मे देर कर रहा है। उसके पास रावण की कमी है। जो व्यक्ति रावण का काम करता है वह रामरतन को ही पसन्द नहीं, फिर उसे ग्वालियर के नरेश कैसे पसन्द करेंगे ? इतनी बड़ी इस पृथ्वी पर उसे एक रावण नहीं मिलता। रामरतन रावण खोज रहा है और परेशान हो रहा है। रावण की प्रतिच्छवि कही दीखती नही। उस रावण के भयानक चेहरे पर क्रोध था, हिंसा थी। उसके भारी गले से कर्कश आवाज निकलती थी। हां, ऐसा ही रावण होना चाहिए, ऐसा ही रावण रामलीला में सजेगा, ऐसा ही रावण जगन्माता जानकी का हरण कर सकता है।

और आखिर ऐसा ही एक व्यक्ति उसे एक शराबखाने में दिखलाई दिया। उसके चेहरे पर अभिमान और क्रूरता थी। कर्कश कठ से गालियो की बौछार निकल रही थी। दूकानदार से वह मुफ्त में शराब मांग रहा था, लेकिन शराब के बदले दोनों में बेशुमार गालियो का विनिमय होने लगा था। हां, यही व्यक्ति है, जो चाहे तो रावण बनकर सचमुच सज सकता है। चेहरे पर कैसी भयानकता है, आंखों में कितना

कमीनापन है। यह साधु का कपट-वेश धारण करके सीता के पास जाएगा तब भी मन, वाणी और रूप की भयानकता नही मिटेगी। देखते ही लोग कह देंगे, यही रावण है, कपटी बदमाश !

रामरतन आगे बढ़ गया और दूकानदार के सामने चवन्नी फेंककर बोला, "भाई, मेरी ओर से इन्हें पिला दो, एक बोतल !"

"रे !" रावण की प्रतिच्छविवाला व्यक्ति बोला, "तू तो बड़ा दया-वान है, यार ! बतला, मैं तेरा क्या काम करूं ? तू मुझसे क्या काम लेगा ?"

रामरतन ने कहा, "मेरी एक रामलीला-पार्टी है, मैं उसमें तुम्हें रावण का पार्ट देना चाहता हूं।"

रावण, "अच्छा, मैं करूंगा।"

और सचमुच उसके द्वारा रावण का काम सबसे अच्छा हुआ। रामलीला समाप्त होने के बाद रामरतन ने उससे पूछा "बोलो, आज पुरस्कार में मैं तुम्हें क्या दूं ?"

रावण ने कहा, "मैं आपसे पहले भी बहुत कुछ पा चुका हूं, अब आज क्या मांगूं ?"

"पहले ?" रामरतन ने आश्चर्य से कहा, "मैंने तो पहले तुम्हें कभी देखा भी नही !"

"हां, आप मुझे नही पहचान सके, लेकिन मैंने आपको पहले दिन ही पहचान लिया था। मैं वही आदमी हूं, जो लड़कपन में आपके यहाँ राम का पार्ट करता था। उसके बाद मेरे मामा आकर आपसे मुझे ले गए। याद कीजिए मैं वही आदमी हूं। एक दिन आपके यहाँ मैं राम बनता था। याद आया ?"

"हां," रामरतन को अब सब याद आ गया। रावण के उस भया-नक चेहरे के भीतर से रामरतन को राम की वही सावनी-सलोनी निर्मल छवि फूटती हुई-सी दिखलाई पड़ी। वह आश्चर्य से चकित होकर बोल उठा, "हां, तुम वही राम हो ! मुझे याद आया, तुम वही राम हो !"

Rajesh Kumar

Sohan Pal

Shafiq Khan B.A. (Hons) P.U

'अज्ञेय'

श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' का जन्म सन् १९११ ई० में कसिया (गोरखपुर) में हुआ था। क्रांतिकारी आन्दोलन में भाग लेने के कारण आपको एम० ए० की पढ़ाई छोड़नी पड़ी और कई बार जेल-यात्रा करनी पड़ी। आपकी प्रथम कहानी सन् १९२४ ई० में 'सेवा' पत्रिका में छपी थी।

'अज्ञेय' जी की प्रतिभा बहुमुखी है। आपने कविता, कहानी, निबन्ध, आलोचना और गद्यगीत आदि रूपों में साहित्य-सृजन किया है। क्रांतिकारी जीवन के कारण अधिकांश कहानियाँ जेल और क्रांतिकारी संघर्ष का चित्र प्रस्तुत करती है। स्वभाव से घुमक्कड़ होने के कारण आपके यात्रा-वृत्तान्त बहुत आकर्षक हैं।

'अज्ञेय' जी ने अँग्रेज़ी साहित्य का विशेष अध्ययन किया है जिसका प्रभाव आपकी कहानियों पर पड़ा है। देश-विदेश के भ्रमण का विस्तृत अनुभव भी आपकी कहानियों में देखने को मिलता है।

'अज्ञेय' जी की कहानियाँ भाव-प्रधान होती हैं। उनमें गद्य की काव्यात्मकता मिलती है। कहानियों के अधिकांश पात्र मध्यम वर्ग के है। आपकी कहानियाँ प्रायः घटना-प्रधान नहीं होती, अपितु उनमे कुछ मानसिक स्थितियों के चित्र होते है। उनमें बाह्यद्वन्द्व की अपेक्षा अन्तर्द्वन्द्व की प्रबलता मिलती है। चरित्र-चित्रण मनोविश्लेषणात्मक पद्धति से किया गया है।

आजकल आप 'दिनमान' साप्ताहिक के सम्पादक हैं।

१३

सेब और देव

प्रोफेसर गजानन पण्डित ने अपना चश्मा पोंछकर फिर आंखों पर लगाया और देखते रह गए।

मोटर पर से उतरकर और सामान डाकबगले मे भिजवाकर उन्होने सोचा था, अभी आराम करने की जरूरत तो है नहीं, जरा घूम-घामकर पहाड़ी सौन्दर्य देख ले, और इसीलिए मोटर के अड्डे के धक्कम-धक्के मे अलग होकर वे इस पहाडी रास्ते पर हो लिए थे। छाया में जब चश्मे का कांच ठण्डा हो गया और उसपर उनके गर्म बदन से उठी हुई भाप जमने लगी, तब उन्होंने चश्मा उतारकर रूमाल से मुँह पोंछा, फिर चश्मा साफ करके आँखों पर चढाया और फिर देखते रह गए।

पहाड़ी रास्ता आगे एकाएक खुल गया था। चीड़ के वृक्ष समाप्त हो गए। रास्ते को पार करता हुआ एक झरना बह रहा था। उसका जितना अंश समतल भूमि में था, उसपर तो छाया थी, लेकिन जहा वह मार्ग के एक ओर नीचे गिरता था, वहा प्रपात के फेन पर सूर्य की किरणें पड रही थीं। ऐसा जान पड़ता था कि अन्धकार की कोख से चादी का प्रवाह फूट पड़ा है—या प्रकृति-नायिका की कजरारी आखों से स्नेह-गद्गद आंसुओं की झड़ी··· और उसके पार एक चट्टान के सहारे एक पहाडी राजपूत बाला खड़ी थी, उसकी चौकी हुई भोली शक्ल से साफ दीखता था कि प्रोफेसर साहब का वहां अकस्मात् आ जाना उसे एकदम अनधिकार प्रवेश मालूम हो रहा है।

प्रोफेसर साहब दिल्ली के एक कालेज में प्राचीन इतिहास और पुरा-

तत्त्व के अध्यापक है । वे उन थोड़े-से लोगों में से हैं, जिनका पेशा और मनोरंजन एक ही है—मनोरंजन के लिए भी वे पुरातत्त्व की ओर ही जाते है । यहां कुलू पहाड की सुरम्य उपत्यकाओं में भी वे यही सोचते हुए आए है कि यहां भारत की प्राचीनतम सभ्यता के अवशेष उन्हें मिलेंगे, और हिन्दू-काल की शिल्प-कला के नमूने, और धातु या प्रस्तर या सुधा की मूर्तियां और न जाने क्या-क्या···लेकिन इतना सब होते हुए भी सौंदर्य के प्रति—जीते-जागते स्पन्दनयुक्त क्षणभंगुर सौंदर्य के प्रति—उनकी आंखें अन्धी नहीं है ! बाला को वहां खड़ी देखकर, उसके पैरों के पास बहते झरने का शब्द सुनते हुए उन्हें पहले तो एक हंसिनी का खयाल आया, फिर सरस्वती का (यद्यपि बाला के हाथ में वीणा नहीं, एक छोटी-सी छड़ी थी) । उन्होंने अपने स्वर को यथासम्भव कोमल बनाकर पूछा, "तुम कहां रहती हो ?"

बाला ने उत्तर नहीं दिया ससम्भ्रम दृष्टि से उनकी ओर देखकर जल्दी-जल्दी पहाड़ी पर चलने लगी ।

प्रोफेसर साहब मुस्कराकर आगे चल दिए । बालिका का भोलापन उन्हें अच्छा-अच्छा लगा । सोचने लगे, 'कितने सीधे-सादे सरल स्वभाव होते है यहां के लोग ! प्रकृति की सुखद गोद में खेलते हुए इन्हें न फिक्र है, न खटका है, न लोभ-लालच है । अपने खाने-पीने, ढोर चराने गाने-बजाने में दिन बिता देते है । तभी तो बाहर से आनेवाले आदमी को देखकर सकोच होता है । अपने-आप में लीन रहनेवाले इन भोले प्राणियों को बाहरवालों से क्या सरोकार ?'

आगे बढ़ते-बढ़ते प्रोफेसर साहब सोचने लगे, 'ऐसे भले लोग न होते तो प्राचीन सभ्यता के जो अवशेष बचे है, ये भी क्या रह जाते ? खुदा न खास्ता ये लोग यूरोपियन सभ्यता को सीखे हुए होते तो एक-दूसरे को नोचकर खा जाते, उसकी राख भी न बची रहने देते । लेकिन यहां तो कालिदास के जमाने का ही आदर्श है, सबको अपने काम से मतलब है, दूसरे के काम में दखल देना, दूसरे के मुनाफे की ओर दृष्टि डालना यहां

महापाप है। लोग ढोर चरने छोड़ देते है, शाम को ले आते है। कभी चोरी नही, शिकायत नही। खेती खड़ी है, और पहरेदार नही। मजाल क्या कि एक भुट्टा भी चोरी हो जाए। मेरे खयाल में तो अगर मैं एक चवन्नी यहां राह मे फेंक दू, तो कोई उठाएगा भी नही कि न जाने किसकी है और कौन लेने आए?'

रास्ता अब फिर घिर गया था, लेकिन चीड़ के दीर्घकाय वृक्षों से नहीं, अब उसके दोनो ओर सेब के छोटे-छोटे लचीले गातवाले पेड, डार-डार पर लदे हुए फलो के कारण मानो विनय से झुके हुए—क्योंकि जहां सार होता है, वहा विनय अवश्य होती है, क्षुद्र व्यक्ति ही अविनयी हो सकता है—और कभी-कभी हवा से झूम-से जाते हुए। कुलू के जगत्-प्रसिद्ध सेबों की प्रशसा प्रोफेसर साहब ने सुन ही रखी थी, कई बार मंगाकर सेब खाए भी थे, लेकिन आज इस प्रकार पेड पर लगे हुए असंख्य फलों को देखकर उनकी तबीयत खुश हो गई। और इससे भी अधिक खुशी हुई इस बात की कि गन्ध और स्वाद और रस की उस विपुल राशि का न कोई रक्षक देखने आता है, न बचाव के लिए बाड़ तक लगाई गई है। पहाडी सभ्यता के प्रति उनका आदरभाव और भी बढ़ गया। क्या शहर में इस तरह बाग रह सकता? फलों के कभी पकने की नौबत न आती। और नही तो स्कूल-कालेजो के लडके ही टिड्डी-दल की तरह आकर सब साफ कर देते और जितना खाते नहीं, उतना बिगाड देते। वहा तो कोई बाग लगाए तो दस-एक भोजपुरिये लठैत पहरेदार रखे, और चारो ओर जेल की-सी दीवार खडी करके कि कोई लुक-छिपकर न भागे, तब कही जाकर चैन से रह सके। और यहा—बाग की सीमा बनाने के लिए एक तार का जगला तक नही है। पेड़ो के नीचे जो लम्बी-लम्बी घास लग रही है, वही रास्ते के पास आकर रुक जाती है, वही तक बाग की सीमा समझ लो तो समझ लो। यहा तो···

प्रोफेसर साहब के पास ही धम्म से कुछ गिरा। उन्होंने चौंककर

देखा, उन्हें आते देख एक लडका पेड़ पर से कूदा है और उसकी अपर्याप्त आड में छिपने की कोशिश कर रहा है। उसके हाथ मे दो सेब है, जिन्हे वह अपने फटे हुए भूरे कोट मे किसी तरह छिपा लेना चाहता है।

उसकी झेंपी हुई आखे और चेहरा साफ कह रहा था कि वह चोरी कर रहा है।

साधारणतया ऐसी दशा मे प्रोफेसर साहब किंचित् ग्लानि से उसकी ओर देखते और आगे चल देते, लेकिन इस समय वैसा नही कर सके। उन्हे जान पड़ा कि यह लडका उस सारी प्राचीन आर्य सभ्यता को एक साथ ही नष्ट-भ्रष्ट किए दे रहा है जो फाहियान के समय से सदियों पहले से अक्षुण्ण बनी चली आई है। वे लपककर उस लडके के पास पहुचे और बोले, "क्यों बे बदमाश, चोरी कर रहा है ? शर्म नही आती दूसरे का माल खाते हुए ?"

लडका घबराया-सा खड़ा रहा, बोल नही सका। प्रोफेसर साहब और भडक उठे। एक तमाचा उसके मुह पर जमाया, सेब छीनकर घास में फेंक दिए जहा वे ओझल हो गए और फिर गर्दन पकड़कर लड़के को धकेलते हुए रास्ते की ओर ले आए।

"पाजी कही का ! चोरी करता है ? तेरे जैसो के कारण तो पहाड़ी लोग बदनाम हो गए। क्यो चुराए थे सेब ? यहा तो पैसे के दो मिलते होंगे, एक पैसे के खरीद लेता। ईमान क्यों बिगाड़ता है ?"

रास्ते पर लडके को उन्होंने छोड़ दिया। वह वहीं खड़ा आँसूभरी आँखों से उधर देखता रहा जहाँ घास में उसके तोडे हुए सेब गिरकर आँखो से ओझल हो गए थे।

प्रोफेसर साहब आगे बढ़ते हुए सोच रहे थे, खड़ा देख रहा होगा कि चोरी भी की, तो भी फल नही मिला। बहुत अच्छा हुआ। सेबों का सड़ जाना अच्छा, चोर को मिलना अच्छा नही। सड़े, चोर को क्या हक है ?

२

प्रोफेसर साहब एक गांव के पास आ रुके। अन्दाज़ से उन्होंने जाना कि यह मनाली गाव होगा और उन्हे याद आया कि यहां पर एक दर्शनीय प्राचीन मन्दिर है। गांव के लोगों से पता पूछते हुए वे मनु के मन्दिर पर पहुंच ही गए। मन्दिर छोटा था, सुन्दर भी नहीं था, लेकिन ससार-भर में मनु का एकमात्र मन्दिर होने के नाते वह अलग महत्त्व रखता था। प्रोफेसर साहब कितनी ही देर तक एकटक होकर उसको ओर देखते रहे, यहां तक कि देहरी पर बैठे हुए बूढ़े पुजारी का ध्यान भी उनकी ओर आकृष्ट हो गया, आने-जानेवाले तो खैर देखते ही थे।

प्रोफेसर साहब ने गद्गद स्वर में पूछा, "आसपास और भी कोई मन्दिर है?"

पास खड़े हुए एक आदमी ने कहा, "नही बाबूजी, यहां कहां मन्दिर?"

"यहा मन्दिर नही? अरे भले आदमी, यहा तो सैकड़ों मन्दिर होने चाहिए। यहा पर···"

"बाबूजी, यहां तो लोग मन्दिर देखने आते नहीं। कभी-कभी कोई आता है तो यह ननू रिखि का मन्दिर देख जाता है, बस और तो हम जानते नहीं।"

पुजारी ने खांसते हुए पूछा, "कौन-सा मन्दिर देखिएगा बाबू?"

"कोई मन्दिर हो, आस-पास के सब मन्दिर-मूर्तियां मैं देखना चाहता हूं।"

पुजारी ने थोड़ी देर सोचकर कहा, "और तो कोई नही, उस चोटी के ऊपर जगल में एक देवी का स्थान है। वहा पहले कभी एक किला भी था, जिसके अन्दर देवी के थान मे पूजा होती थी, पर अब तो उसके कुछ पत्थर ही पड़े हैं। वहां कोई जाता नही। अब उसमें भूत बसते है।"

प्रोफेसर साहब कुछ मुस्कराए, लेकिन बोले, "कैसे भूत?"

"कहते हैं कि पुराने राजाओ के भूत रहते हैं। वे राजा बडे परतापी थे

"अरे उन भूतों से मेरी दोस्ती है !" कहकर प्रोफेसर साहब ने रास्ता पूछा और क्षण-भर सोचकर पहाड़ पर चढ़ने लगे । पुजारी ने 'पास' ही बताया था, तो मील-भर के अधिक नहीं होगा, और अभी तीन बजे हैं, शाम होने तक मजे मे बगले पर पहुंच जाऊगा ।

जगल का रूप बदलने लगा । बड़े-बडे पेड समाप्त हो गए अब छोटी-छोटी झाडियां ही दीख पड़ने लगी । यह पहाड़ का वह मुख था, जो हवा के थपेडों मे सदा पिटता रहता था—जाडों में तो बर्फ की चोटें यहा लगे हुए पेड-पौधे को कुचल डालती । प्रोफेसर साहब की समझ मे आने लगा कि यह ऊचा शिखर किले के लिए बहुत उपयुक्त जगह है और यह भी जान गए कि यहा बना हुआ किला उजडकर कितनी जल्दी निरवशेष हो जाएगा ।

झाडिया भी छोटी होती चली । घास के बजाय अब पथरीली ज़मीन आई, जिसमे किसी तरफ कोई बनी हुई पगडण्डी नही थी, जिधर चले जाओ वही मार्ग । कही-कही लाल पत्थर के भी कुछ टुकडे दीख जाते थे, जो शायद किले की इमारत में कहीं लगे होंगे, नही तो उधर लाल पत्थर नहीं होता । कही-कही पत्थर और मिट्टी के स्तूपाकार टीले की आड में कोई गाढे रग के पत्तोंवाली झाडी लगी हुई दीख जाती, तो वह आसपास के उजाड़ सूनेपन को और भी गहरा कर देती । साझ के धुधले मे ऐसी झाड़ी को देखकर स्तूप में धूम्रवत् निकलते हुए किसी प्रेत की कल्पना होना कोई असम्भव बात नही थी ।

एक ऐसे स्तूप की आड मे प्रोफेसर साहब ने देखा, एक गड्ढे मे कीच भरी है जिसकी नमी से पास मे जाते हुए दो वृक्ष खडे है और उनके नीचे पत्थर का एक छोटा-सा मन्दिर है, जिसका द्वार बन्द पड़ा है ।

प्रोफेसर साहब ने कुण्डे मे अटकी हुई कील निकाली तो द्वार खुलने के बजाय आगे गिर पडा— उसके कब्जे उखड़े हुए थे । उन्होने किवाड़ को उठाकर एक ओर धर दिया, थोडी देर पीछे हटकर खड़े रहे कि बन्द कोठरी के कारण बदबूदार हवा बाहर निकल जाए, फिर भीतर

झांकने लगे ।

मन्दिर की बुरी हालत थी । भीतर न जाने कब बलि-पशुओं के सीग—बकरे के और हिरन के—पड़े हुए थे, जो सूखकर धूल रंग के हो गए थे— उनपर कीडे भी चल रहे थे । फर्श के पत्थरों के जोडों मे से काई उग आई थी । उन सींगों के ढेर से परे देवी के काले पत्थर की मूर्ति एक ओर से लुढक गई थी । पास में पड़ी हुई गणेश की पीतल की मूर्ति जंग से विकृत हो रही थी । केवल दूसरी ओर खड़ा श्वेत पत्थर का शिवलिंग अब भी साफ, चिकना और सधे हुए सिपाही की तरह शान्त खड़ा था । आसपास की जर्जर अवस्था में उसके उस दर्पोन्नत भाव से ऐसा जान पडता था, मानो क्रुद्ध होकर कह रहा हो, 'मेरी इस निभृत अन्तःशाला मे आकर मेरे कुटुम्ब की शान्ति भग करनेवाले तुम कौन ?'

दो-एक मिनट प्रोफेसर साहब देहरी पर खडे-खड़े ही इस दृश्य को देखते रहे । फिर उन्होंने बाह पर टगा हुआ अपना ओवरकोट नीचे रखा. एक बार चारों ओर देखकर निर्जन पाकर भी जूते खोल देना ही उचित समझा और भीतर जाकर देवी की मूर्ति उठाकर देखने लगे ।

मूर्ति अत्यन्त सुन्दर थी । पांच सौ वर्ष मे कम पुरानी नहीं थी । इस लम्बी अवधि का उसपर ज़रा भी प्रभाव नही पड़ा था—या पडा था तो पत्थर को और चिकना करके मूर्ति को सुन्दर ही बना गया था । मूर्ति कही बिकती तो तीन-चार हज़ार से कम की न होती—किसी अच्छे पारखी के पास हो तो दस हज़ार भी कुछ अधिक मूल्य न होता और यह यहां ऐसी उपेक्षित हालत मे पड़ी है । न जाने कब से कोई इस मन्दिर तक आया भी नहीं है ।

प्रोफेसर साहब ने मूर्ति ठीक स्थान पर करके सीधी रख दी और फिर देहरी पर आकर उसका सौन्दर्य देखने लगे ।

पांच सौ वर्ष ! पांच सौ वर्ष से यह यही पड़ी होगी ? न जाने कितनी पूजा इसने पाई होगी, कितनी बलियों के ताज़े, गर्म पूत रक्त से स्नान करके अपना दैवी सौन्दर्य निखारा होगा, और अब कितने बरसों

से इन रेंगते हुए कीडों की लम्बी-लम्बी जिज्ञासु मूछों की ग्लानिजनक गुदगुदाहट सह रही होगी ''उफ, देवत्व की कितनी उपेक्षा ! मानव नश्वर है, यह मर जाए और उसकी अस्थियों पर कीड़े रेंगे, यह समझ मे आता है, लेकिन देवता''पत्थर जड़ है ; उसका महत्त्व कुछ नही ! लेकिन मूर्ति तो देवता की ही है, देवत्व की, चिरन्तनता की निशानी तो है। एक भावना है, पर भावना आदरणीय है। क्या यह मूर्ति यहीं पड़े रहने के काबिल है ? इन कीडों के लिए जिनके पास श्रद्धा को दिल नही, पूजने को हाथ नही, देखने को आँखें नहीं, छूने को त्वचा नही, टटोलने को ये हिलती हुई गन्दी मूछे है'''यह मूर्ति कही ठिकाने से होती—

न जाने क्यों प्रोफेसर साहब ने एकाएक मन्दिर द्वार से हटकर चारों ओर घूमकर देखा, फिर देखा। न जाने क्यो आसपास निर्जन पाकर तसल्ली की सास ली और फिर वहा आ खड़े हुए।

मूर्ति गणेश की भी बुरी नही, लेकिन वह उतनी पुरानी नही, न इतनी सुन्दर शैली पर निर्मित है। पीतल की मूर्ति मे कभी वह बात आ ही नही सकती जो पत्थर मे होती है। देवी की उस मूर्ति को देखते-देखते प्रोफेसर साहब के हृदय की स्पन्दन-गति तीव्र होने लगी—इतनी सुन्दर जो थी वह ! वे फिर आगे बढकर उसे उठाने को हुए, लेकिन फिर उन्होंने बाहर झांककर देखा, पर वहा कोई नहीं था, कोई आता ही नहीं उस बेचारे उजड़े हुए मन्दिर के पास—किसे परवाह थी निर्जन को अपनी दीप्ति से जगमग करती हुई उस देवी की ! देवी के प्रति दया और सहानुभूति से गद्गद होकर प्रोफेसर साहब फिर भीतर आए लपककर मूर्ति को उठाया और अपने धड़कते हुए हृदय को शान्त करने की कोशिश करते हुए एकटक उसे देखने लगे।

दिल इतना क्यो धडक रहा है ? प्रोफेसर साहब को ऐसा लगा जैसे वे डर रहे हैं। फिर उन्हे इस विचार पर हसी-सी आ गई। डर किससे रहा हूं मैं ? प्रेतों से ? मैं भी क्या यहां के लोगों की तरह अन्धविश्वासी हूं जो प्रेतों को मानूगा ? कविता के लिहाज से भले ही मुझे यह सोचना

अच्छा लगे कि यहां प्रेत बसते है, और रात को जब अंधेरा हो जाता है, तब इस बन्द मन्दिर में आकर देवी के आसपास नाचते होगे···देवी है, शिव है, उनके गण भी तो होने चाहिए। रात को मूर्तिग्रों को घेर-घेरकर नाचते होंगे और इन न जाने कब के बलि-पशुओं के भस्मीभूत सीगों से प्रेतोचित प्रसाद पाते होगे! और दिन मे—मन्दिर की कन्दराओं में, दरारों में छिपकर अपनी उपास्य मूर्तियों की रक्षा करते होगे. देखते होंगे कि कौन आता है, क्या करता है···

उन्होने फिर मूर्ति को रख लिया और लौटकर देखा। उन्हे एकाएक लगा जैसे उस अखण्ड नीरवता मे कोई छाया-सा आकर उनके पीछे भाग-कर कहीं छिप गया है! प्रेत! वे फिर एक रुकती-सी हसी हंसकर बाहर निकल आए। इस घोर निर्जन ने मेरे शहर के शोर से उलझे स्नायुओं को और उलझा दिया है! इसी नतीजे पर वे पहुंचे और फिर मन्दिर की ओर देखने लगे।

दिन ढल रहा था। मन्दिर की लम्बी पड़ती हुई छाया को देखकर प्रोफेसर साहब को ऐसा लगा, मानो वह दूर हटती-हटती भी मन्दिर से अलग होना नहीं चाहती, उससे चिपटी हुई है, मानो उसकी रक्षा करना चाहती हो, मानो यह मन्दिर और उसकी मूर्तिया उस छाया की गोद के शिशु हो। प्रोफेसर साहब का मन भटकने लगा।

इजिप्ट के पिरामिड भी इतने ही उपेक्षित पड़े थे। यह मन्दिर आकार में बहुत छोटा है, वे विराट थे; लेकिन उपेक्षा तो यही थी। उनमे भी न जाने क्या-क्या बाते फैला रखी थीं, भूत-प्रेतों की। अन्त मे यूरोप के पुरातत्त्वविद् साहस करके वहा गए, उन्होने उनमे प्रवेश किया, और अब ससार के बडे-बडे सग्रहालयों में वे खज़ाने पड़े है और महत्व के अनु-रूप सम्मान पाते है। फिलाडेलफिया के अजायबघर में तूता खामेन की वह स्वर्णमूर्ति—उस नौ सेर खरे सोने का ही मूल्य तीस हजार रुपये होगा—फिर प्राचीनता का मूल्य अलग और उसमें जड़े हुए हीरे-जवाहरात का अलग···कुल मिलाकर लाखों रुपये की चीज है वह···

वे फिर भीतर गए। मूर्ति उठाई और रखकर बाहर आ गए। उन्होंने फिर सब ओर देखा। कोई नहीं था। सूर्य भी एक छोटे-से बादल के पीछे छिप गया था।

एकाएक उनकी घबराहट का कारण स्पष्ट हो गया। कुछ ठण्डी-सी जानकर उन्होंने जल्दी से ओवरकोट पहना और फिर भीतर चले गए।

मूर्ति के उपयुक्त यह स्थान कदापि नही है। मन्दिर है, पर जहा पूजा हो नही होती वह कैसा मन्दिर ? और क्या गांववाले परवाह करते है ? यहां मन्दिर भी गिर जाए तो शायद महीनों उन्हें पता ही न लगे —कभी किसी भटकी हुई भेड-बकरी की खोज मे आया हुआ गड-रिया आकर देखे तो देखे। यहा मूर्ति का पडा रहने देना भूल नही, पाप है।

इस निश्चय पर आकर भी उन्होंने एक बार बाहर आकर तसल्ली की कि कहीं कोई देख तो नही रहा है, तब लौटकर मूर्ति उठाकर जल्दी से कोट के भीतर छिपाई, किवाड को यथास्थान खडा किया, बूट एक हाथ मे उठाए और बिना लौटकर देखे हुए उतरने लगे।

जब देवी का स्थान और उसके ऊपर खड़े दोनो पेडों की फुनगी तक आंखों की ओट हो गई, तब उन्होंने रुककर बूट पहने और फिर धीरे-धीरे उतरते हुए ऐसा मार्ग खोजने लगे जिससे गाव म मे होकर न जाना पड़े, शिखर के दूसरे मुख से ही वे उतर सकें।

गाव मील-भर पीछे छूट गया था। सेबो के बगीचे फिर शुरू हो गए थे। कहीं कोई मधु पीकर अघाया हुआ मोटा-सा काला भौंरा प्रोफेसर साहब के कोट से टकरा जाता था, कभी कोई तितली उनका रास्ता काट जाती थी। सूर्य की धूप लाल हो गई थी—वे सब अपना-अपना ठिकाना खोज रहे थे। प्रोफेसर साहब भी अपने ठिकाने को जा रहे थे। उनका हृदय आह्लाद से भर रहा था। उनका पहला ही दिन कितना सफल हुआ था ? कितना सौंदर्य उन्होंने देखा था—और कितना सौंदर्य, बहुमूल्य सौन्दर्य उन्होंने पाया था। कुलू का अनिर्वचनीय सौन्दर्य ! वास्तव में वह

देवताओं का अचल है···

उस समय प्रोफेसर साहब के भीतर जो कुलू-प्रेम का ही नही, मानब-प्रेम का, संसार-भर की शुभेच्छा का रस उमड़ रहा था, उसकी बराबरी कुलू के रस-भरे सेब भी क्या करते ! प्रोफेसर साहब की स्नेह उंडेलती हुई दृष्टि के नीचे वे मानो और पककर और रस से भर जाते थे, उनका रंग कुछ और लाल हो आता था। कितने रस-गद्गद हो रहे थे प्रोफेसर साहब !

सेब के बाग में फिर कही धमाका हुआ। प्रोफेसर साहब ने देखा, एक लड़का उन्हे देखकर शाख से कूदा है, उसके कूदने के धक्के से फलों की लदी हुई शाखा टूटकर आ गिरी है।

प्रोफेसर साहब ने रोब के स्वर में कहा, "क्या कर रहा है ?"

लडके ने सहमकर उनकी ओर देखा—वही लडका था ! हाथ का थोड़ा-सा खाया हुआ सेब वह कोट के गुलूबन्द के भीतर छिपा रहा था।

प्रोफेसर साहब के तन में आग लग गई। लपककर बालक के कोट का गला उन्होंने पकड़ा, झपटा देकर बाहर गिराया, दो तमाचे उसके मुह पर लगाते हुए कहा, "बदमाश, फिर चोरी करता है ! अभी मैं डांट के गया था, बेशर्म को शर्म भी नही आयी।"

उन्होंने लड़के को छाती मे धक्का दिया। वह लड़खड़ाकर कुछ दूर जा पडा, गिरने को हुआ, सभल गया, फिर एक हाथ मे कोट को वही से थामकर जहा प्रोफेसर ने धक्का दिया था, एक दर्द-भरी चीख मार-कर रो उठा।

चीख सुनकर प्रोफेसर साहब को कुछ शान्ति हुई, कुछ आनन्द-सा हुआ। विद्रूप मे उन्होंने कहा, "क्यों, दुखती है छाती ? और छिपाओ सेब वहा पर !"

बात में भरे हुए तिरस्कार को और तीखा बनने के लिए उनके हाथ ने उनका अनुकरण किया, उठकर तेज़ी से प्रोफेसर साहब के ओवरकोट के कालर में घुसा।

एकाएक प्रोफेसर साहब पर मानो गाज गिरी। एक चौंधिया देने-वाला आलोक क्षण-भर उनके आगे जलकर एक वाक्य लिख गया, 'इसने तो सेब चुराया है, तुम देवस्थान लूट लाए !'

सहमे हुए स्तंभित-से प्रोफेसर साहब क्षण-भर खड़े रहे, फिर धीरे-धीरे उलटे पांव गाव की ओर चल पड़े।

तर्क उन्हें सुझाने लगा कि बेवकूफी है, उनकी दलील बिलकुल गलत है, तुलना आधारहीन है ; लेकिन वे न जाने कैसे इस सब बुद्धि की प्रेरणा के प्रति बहरे हो गए थे। जैसे कोलाहल बढने लगा, उसे रोक रखने के लिए उनकी गति भी तीव्रतर होती गई। जब वे आंधी की तरह गाव में से गुजरे, तब घर जाता हुआ प्रत्येक व्यक्ति कुछ विस्मय से उनकी ओर देखता और उन्हे लगता कि वे उनकी छाती की ओर ही देख रहे हैं, जैसे उस काले ओवरकोट में छिपी हुई देव-मूर्ति को और उसके पीछे भी प्रोफेसर साहब के दिल मे बसे हुए पाप को वे खूब अच्छी तरह जानते हैं।

अधेरा होते-होते वे मन्दिर पर पहुचे। किवाड एक ओर पटककर उन्होंने मूर्ति को यथास्थान रखा। लौटकर चलने लगे तो आसपास के वृक्ष अधेरे मे भयानक हो गए थे। सुनसान ने उन्हे फिर सुझाया कि वे एक निधि को नष्ट कर रहे है, लेकिन जाने क्यो उनके मन मे शान्ति उमड़ आई। उन्हे लगा कि दुनिया बहुत ठीक है, बहुत अच्छी है।

यशपाल

वर्तमान कथाकारों में यशपाल जी का नाम विशेष महत्व का है। बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त करके आप क्रान्तिकारी आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने लगे और कई बार जेल गए।

आप मार्क्सवादी धारा के अग्रणी लेखकों में से हैं। आप की रचनाओं में राजनीति का पर्याप्त प्रभाव है। आपके विचार स्पष्ट, चिन्तन सुलझा हुआ और अभिव्यक्ति कला-पूर्ण होती है। भाषा और शैली में स्वभाविकता है। कुछ आलोचक आपके साहित्य पर प्रचारात्मकता का आरोप लगाते हैं।

आपने कहानी, उपन्यास, निबन्ध, संस्मरण सभी कुछ लिखा है। गुण और मात्रा दोनों दृष्टियों से आपका साहित्य उल्लेखनीय है। पाठक की प्रसुप्त चेतना को झकझोर कर समाज को बदलने की प्रेरणा देना आपके साहित्य की विशेषता है।

आपने स्वतंत्र लेखक का जीवन अपनाया है और निरंतर लिख रहे है। आपकी वय के साथ-साथ आपकी कृतियों में भी प्रौढ़ता आ रही है।

१४

दुःख

जिसे मनुष्य सर्वापेक्षा अपना समझ भरोसा करता है, जब उसीसे अपमान और तिरस्कार प्राप्त हो, मन वितृष्णा से भर जाता है, एकदम मर जाने की इच्छा होने लगती है ; इसे शब्दो में बता सकना सम्भव नहीं ।

दिलीप ने हेमा को पूर्ण स्वतन्त्रता दी थी । वह उसका कितना आदर करता था, कितनी आन्तरिकता से वह उसके प्रति अनुरक्त था ! बहुत-से लोग इसे 'अति' कहेंगे । इसपर भी जब वह हेमा को सन्तुष्ट न कर सका और हेमा केवल दिलीप के उसकी सहेली के साथ दूसरे 'शो' सिनेमा देख आने के कारण रात-भर रूठी रहकर सुबह उठते ही मा के घर चली गई, तब दिलीप के मन में क्षोभ का अन्त न रहा ।

सितम्बर का अन्तिम सप्ताह था । वर्षा की ऋतु बीत जाने पर भी दिन-भर पानी बरसता रहा । दिलीप बैठक की खिड़की और दरवाजो पर पर्दे डाले बैठा था । वितृष्णा और ग्लानि मे समय स्वय यातना बन जाता है । एक मिनट गुजारना मुश्किल हो जाता है । समय को बीतता न देख दिलीप खीजकर सो जाने का यत्न करने लगा । इसी समय जीने पर से छोटे भाई के धम-धमकर उतरते चले आने का शब्द सुनाई दिया । अलसाई हुई आखों को आधा खोल उसने दरवाजे की ओर देखा ।

छोटे भाई ने पर्दे को हटाकर पूछा, "भाईजी, आपको कही जाना न हो तो मैं मोटर साइकल ले जाऊ ?"

इस विघ्न से शीघ्र छुटकारा पाने के लिए दिलीप ने हाथ के इशारे

से उसे इजाज़त दे, आँखें बन्द कर लीं।

दीवार पर टंगे क्लॉक ने कमरे को गुंजाते हुए छः बज जाने की सूचना दी। दिलीप को अनुभव हुआ—क्या वह योंही कैद मे पड़ा रहेगा। उठकर खिड़की का पर्दा हटाकर देखा, बारिश थम गई थी। अब उसे दूसरा भय हुआ, कोई आ बैठेगा और अप्रिय चर्चा चला देगा।

वह उठा। भाई का साइकल ले, गली के कीचड़ मे बचता हुआ और उससे अधिक लोगों की निगाहों मे छिपता हुआ वह मोरी दरवाज़े से बाहर निकल, शहर की पुरानी फसील के बाग से होता हुआ मिण्टो पार्क जा पहुंचा। उस लम्बे-चौड़े मैदान मे पानी मे भरी घास पर पछवा के तेज झोंको मे ठिठुरने के लिए उस समय कौन आता?

उस एकान्त मे एक बेंच के सहारे साइकल खड़ा कर वह बैठ गया। सिर से टोपी उतार बेंच पर रख दी। सिर मे ठण्ड लगने से मस्तिष्क की व्याकुलता कुछ कम हुई।

ख़याल आया, यदि ठण्ड लग जाने से वह बीमार हो जाए, उसकी हालत खराब हो जाए तो वह चुपचाप शहीद की तरह अपने दुःख को अकेला ही सहेगा। किसीको अपने दुःख का भाग लेने के लिए न बुलाएगा। जो उसपर विश्वास नही कर सकता, उसे क्या अधिकार कि उसके दुःख का भाग बटाने आए। एक दिन मृत्यु दबे पाव आएगी और उसके रोग के कारण, हृदय की व्यथा और रोग को ले, उसके सिर पर सांत्वना का हाथ फेर उसे शात कर चली जाएगी। उस दिन जो लोग रोने बैठेंगे, उनमें हेमा भी होगी। उस दिन उसे खोकर हेमा अपने नुक-सान का अन्दाज़ा कर अपने व्यवहार के लिए पछताएगी। यही बदला होगा दिलीप के चुपचाप दुःख सहते जाने का। निश्चय कर उसने सतोष का एक दीर्घ निश्वास लिया। करवट बदल ठण्डी हवा खाने के लिए वह बैठ गया।

समीप तीन फर्लांग पर मुख्य रेलवे लाइन मे कितनी ही गाड़ियां गुज़र चुकी थीं। उधर दिलीप का ध्यान न गया था। अब जब फ्रण्टियर

मेल तूफान वेग से, तीव्र कोलाहल करती हुई गुजरी तो दिलीप ने उस ओर देखा। लगातार फर्स्ट और सैकंड के डिब्बों से निकलनेवाले तीव्र प्रकाश से वह समझ गया—फ्रण्टियर मेल जा रही है, साढ़े नौ बज गए।

स्वयं सहे अन्याय के प्रतिकार की एक सम्भावना देख उसका मन कुछ हलका हो गया था। वह लौटने के लिए उठा। शरीर में शैथिल्य की मात्रा बाकी रहने के कारण साइकल पर न चढ़ वह पैदल-पैदल बागोबाग, बादशाही मसजिद से टकसाली दरवाजे और टकसाली से भाटी दरवाजे पहुंचा। मार्ग में शायद ही कोई व्यक्ति दिखाई दिया हो। सड़क के किनारे स्तब्ध खड़े बिजली के लैम्प निष्काम और निर्विकार भाव से अपना प्रकाश सड़क पर डाल रहे थे। मनुष्यों के अभाव की कुछ भी परवाह न कर, लाखों पतंगे गोल बांध-बांधकर, इन लैम्पों के चारों ओर नृत्य कर रहे थे। और जगत् के ये अद्भुत नमूने थे। प्रत्येक पतंगा एक नक्षत्र की भांति अपने मार्ग पर चक्कर काट रहा था। कोई छोटा, कोई बड़ा दायरा बना रहा था। कोई दायें को, कोई बायें को, कोई आगे को, कोई विपरीत गति में, निरन्तर चक्कर काटते चले जा रहे थे। कोई किसी से टकराता नहीं। वृक्षों के भीगे पत्ते बिजली के प्रकाश में चमचमा रहे थे।

एक लैम्प के नीचे से आगे बढ़ने पर उसकी छोटी परछाईं उसके आगे फैलती चलती। ज्यों-ज्यों वह लैम्प से आगे बढ़ता, परछाईं पलट-कर पीछे हो जाती। बीच-बीच में वृक्षों की टहनियों की परछाईं उसके ऊपर से होकर निकल जाती। सड़क पर पड़ा प्रत्येक भीगा पत्ता लैम्पों की किरणों का उत्तर दे रहा था। दिलीप सोच रहा था—मनुष्य के बिना भी संसार कितना व्यस्त और रोचक है ?

कुछ कदम आगे बढ़ने पर सड़क के किनारे नीबू के वृक्षों की छाया में कोई श्वेत-सी चीज दिखाई दी। कुछ और बढ़ने पर मालूम हुआ, कोई छोटा-सा लड़का सफेद कुर्ता-पायजामा पहिरे, एक थाली सामने रखे कुछ बेच रहा है।

बचपन में गली-मुहल्ले के लड़कों के साथ उसने अक्सर खोमचेवाले से सौदा खरीदकर खाया था। अब वह इन बातों को भूल चुका था। परन्तु इस सर्दी में सुनसान सड़क पर जहाँ कोई आने-जानेवाला नहीं, यह खोमचा बेचनेवाला कौन बैठा है ?

खोमचेवाले के क्षुद्र शरीर और आयु ने भी उसका ध्यान आकर्षित किया; उसने देखा, रात में सौदा बेचने निकलनेवाले उस सौदागर के पास मिट्टी के तेल की ढिबरी तक नहीं। समीप आकर उसने देखा, वह लड़का सर्द हवा में सिकुड़कर बैठा था। दिलीप के समीप आने पर उसने आशा की एक निगाह उसकी ओर डाली और फिर आँखें झुका लीं।

दिलीप ने और ध्यान से देखा, लड़के के मुख पर खोमचा बेचनेवालों की चतुरता न थी, बल्कि उसकी जगह थी एक कातरता। उसकी थाली भी खोमचे का थाल न होकर घरेलू व्यवहार की एक हलकी मुरादाबादी थाली थी। तराजू भी न था। थाली में कागज के आठ टुकड़ों पर पकौड़ों की बराबर-बराबर ढेरियाँ लगाकर रख दी गई थीं।

दिलीप ने सोचा इस ठण्डी रात में हमीं दो व्यक्ति बाहर हैं। वह उसके पास जाकर ठिठक गया। मनुष्य-मनुष्य में कितना भेद होता है ? परन्तु मनुष्यत्व एक चीज है जो कभी-कभी भेद की सब दीवारों को लाँघ जाती है। दिलीप को समीप खड़े होते देख लड़के ने कहा

"एक-एक पैसे में एक-एक ढेरी।"

एक क्षण चुप रहकर दिलीप ने पूछा, "सबके कितने पैसे ?"

बच्चे ने उंगली से ढेरियों को गिनकर जवाब दिया "आठ पैसे।"

दिलीप ने केवल बात बढ़ाने के लिए पूछा, "कुछ कम नहीं लोगे ?"

सौदा बिक जाने की आशा से जो प्रफुल्लता बालक के चेहरे पर आ गई थी, वह दिलीप के इस प्रश्न से उड़ गई। उसने उत्तर दिया, 'माँ बिगड़ेगी।"

इस उत्तर से दिलीप द्रवित हो गया और बोला, "क्या पैसे माँ को देगा ?" बच्चे ने हामी भरी।

दिलीप ने कहा, "अच्छा सब दे दो।"

लड़के की व्यस्तता देख दिलीप ने अपना रूमाल निकालकर दे दिया और पकौड़े उसमे बधवा लिए।

आठ पैसे का खोमचा बेचने जो इस सर्दी मे निकला है उसके घर की क्या अवस्था होगी ? यह सोचकर दिलीप सिहर उठा। उसने जेब से एक रुपया निकाल लडके की थाली मे डाल दिया। रुपये की खनखनाहट से वह सुनसान रात गूज उठी। रुपये को देख लडके ने कहा, "मेरे पास तो पैसे नही है ?"

दिलीप ने पूछा, "तेरा घर कहा है ?"

"पास ही गली मे है।" लडके ने जवाब दिया।

दिलीप के मन मे उसका घर देखने का कौतूहल जाग उठा। बोला, "चलो मुझे भी उधर से ही जाना है। रास्ते मे तुम्हारे घर से पैसे ले लूगा।"

बच्चे ने घबराकर कहा, "पैसे तो घर पर भी न होगे।"

दिलीप सुनकर सिहर उठा परन्तु उत्तर दिया, "होगे, तुम चलो।"

लडका थाली को छाती से चिपटा आगे-आगे चला और उसके पीछे बाइसिकल को थामे दिलीप।

दिलीप ने पूछा, "तेरा बाप क्या करता है ?"

लडके ने उत्तर दिया, "बाप मर गया है।"

दिलीप चुप हो गया। कुछ और दूर जा उसने पूछा, "तुम्हारी मा क्या करती है ?"

लड़के ने उत्तर दिया, "मां एक बाबू के यहां चौका-बर्तन करती थी, अब बाबू ने हटा दिया।"

दिलीप ने पूछा, "क्यों हटा दिया बाबू ने ?"

लड़के ने जवाब दिया, "मा अढाई रुपया महीना लेती थी, जगतू की मा ने बाबू से कहा कि वह दो रुपये मे सब काम कर देगी। इसलिए बाबू की घरवालो ने मा को हटाकर जगतू की मा को रख लिया।"

दिलीप फिर चुप हो गया। लड़का नंगे पैर गली के कीचड़ में छप-छप करता चला जा रहा था। दिलीप को कीचड़ में बचकर चलने में असुविधा हो रही थी। लड़के की चाल की गति को कम करने के लिए दिलीप ने प्रश्न किया, "तुम्हें जाड़ा नहीं मालूम होता ?"

लड़के ने शरीर को गरम करने के लिए चाल को और तेज करते हुए उत्तर दिया, "नहीं।"

दिलीप ने फिर प्रश्न किया, "जगतू की मां क्या करती थी ?"

लड़के ने कहा, "जगतू की मां स्कूल में लड़कियों को घर से बुला लाती थी। स्कूलवालों ने लड़कियों को घर से लाने के लिए मोटर रख ली है, उसे निकाल दिया।"

गली के मुख पर कमेटी का बिजली का लैम्प जल रहा था। ऊपर की मंजिल की खिड़कियों से भी गली में कुछ प्रकाश पड़ रहा था। उससे गली का कीचड़ चमककर किसी कदर मार्ग दिखाई दे रहा था।

सकरी गली में एक बड़ी खिड़की के आकार का दरवाजा खुला था। उसका धुंधला लाल-सा प्रकाश सामने पुरानी ईंटों की दीवार पर पड़ रहा था। इसी दरवाजे में लड़का चला गया।

दिलीप ने झांककर देखा मुश्किल से आदमी के कद की ऊंचाई की कोठरी में—जैसी प्रायः शहरों में ईंधन रखने के लिए बनी रहती है—धुआं उगलती मिट्टी के तेल की एक ढिबरी अपना धुंधला लाल प्रकाश फैला रही थी। एक छोटी चारपाई जैसी कि श्राद्ध में महाब्राह्मणों को दान दी जाती है, काली दीवार के सहारे खड़ी थी। उसके पास से एक-दो मैले कपड़े लटक रहे थे। एक क्षीणकाय, आधी उम्र की स्त्री मैली-सी धोती में शरीर लपेटे बैठी थी।

बेटे को देख स्त्री ने पूछा, "सौदा बिका बेटा ?"

लड़के ने उत्तर दिया, "हां मां," और रुपया मां के हाथ में देकर कहा, "बाकी पैसे बाबू को देने हैं।"

रुपया हाथ में ले मां ने विस्मय से पूछा, "कौन बाबू बेटा ?"

बच्चे ने उत्साह से कहा, "बाइसिकलवाले बाबू ने सब सौदा लिया है। उसके पास छुट्टे पैसे नही थे। बाबू गली मे खडा है।"

घबराकर मां बोली, "रुपये के पैसे कहा मिलेगे बच्चा ?" सिर के कपडे को सभाल दलीप को सुनाने के अभिप्राय से मा ने कहा, "बेटा, रुपया बाबूजी को लौटाकर घर का पता पूछ ले, पैसे कल ले आना।"

लडका रुपया ले दिलीप को लौटाने आया। दिलीप ने ऊंचे स्वर से, ताकि मा सुन ले, कहा, "रहने दो रुपया, कोई परवाह नही, फिर आ जाएगा।"

सिर के कपड़े को आगे खींच स्त्री ने कहा, "नही जी आप रुपया लेते जाइए, बच्चा पैसे कल ले आएगा।"

दिलीप ने शरमाते हुए कहा, "रहने दीजिए, यह पैसे मेरी तरफ से बच्चे का मिठाई खाने के लिए रहने दीजिए।"

स्त्री 'नही, नही' करती रह गई। दिलीप अंधेरे मे पीछे हट गया।

स्त्री के मुरझाए, कुम्हलाए, पीले चेहरे पर कृतज्ञता और प्रसन्नता की झलक छा गई। रुपया अपनी चादर की खूट मे बांध, एक ईट पर रखे पीतल के लोटे से बाह के इशारे से पानी ले उसने हाथ धो लिया और पीतल के एक बेले के नीचे से मैले अगोछे में लिपटी रोटी निकाल, बेटे का हाथ धुला उसे खाने को दे दी।

बेटा तुरन्त की कमाई से पुलकित हो रहा था। मुंह बनाकर कहा, "ऊ-ऊ रूखी रोटी !"

मां ने पुचकारकर कहा, "नमक डाला हुआ है बेटा।"

बच्चे ने रोटी ज़मीन पर डाल दी और रूठ गया, "सुबह भी रूखी रोटी, हा, रोज़-रोज रूखी !"

हाथ आंखों पर रख बच्चा मुंह फैलाकर रोना ही चाहता था, परन्तु मां ने उसे गोद में खींच लिया और कहा, "मेरा राजा बेटा, सुबह ज़रूर दाल खिलाऊगी। देख, बाबू तेरे लिए रुपया दे गए है। शाबाश !"

"सुबह मैं तुझे खूब सौदा बना दूगी फिर तू रोज़ दाल खाना।"

बेटा भिभक गया। उसने पूछा, "मा, तूने रोटी खा ली ?"

खाली अगोछे को नहाते हुए मा ने उत्तर दिया, "हा बेटा, अब मुझे भूख नही है, तू खा ले !"

भूखी मा का बेटा बचपन के कारण भूखा था परन्तु मा की बात के बावजूद घर की हालत से परिचित था, उसने अनिच्छा से एक रोटी मां की ओर बढ़ाकर कहा, "एक रोटी तू खा ले।"

मा ने स्नेह से पुचकारकर कहा "ना बेटा, मैंने सुबह देर से खाई थी, मुझे अभी भूख नही है, तू खा।"

दिलीप के लिए और देख सकना सम्भव न था। दातो से होठ दबा वह पीछे हट गया।

* *

मकान पर आकर वह बैठा ही था, नौकर ने आ, दो भद्रपुरुषो के नाम बताकर कहा, आए थे बैठकर चले गए। खाना तैयार होने की सूचना दी। दिलीप ने उसकी ओर बिना देखे ही कहा, "भूख नही।" उसी समय उसे लडके की मा का 'भूख नही' कहना याद आ गया।

नौकर ने विनीत स्वर मे पूछा, "थोडा दूध ले आऊ ?"

दिलीप को गुस्सा आ गया। उसने विद्रूप से कहा, "क्यो, भूख न हो तो दूध पिया जाता है ? दूध ऐसी फालतू चीज है ?"

नौकर कुछ न समझ विस्मित खडा रहा।

दिलीप ने खीझकर कहा, "जाओ जी।"

मिट्टी के तेल की ढिबरी के प्रकाश मे देखा वह दृश्य, उसकी आंखों के सामने से हटना न चाहता था।

छोटे भाई ने आकर कहा, "भाभी ने यह पत्र भेजा है।" और लिफाफा दिलीप की ओर बढा दिया।

दिलीप ने पत्र खोला। पत्र की पहली लाइन मे लिखा था।

"मै इस जीवन मे दु.ख ही देखने के लिए पैदा हुई हूं ..."

दिलीप ने आगे न पढ़, पत्र फाडकर फेंक दिया। उसके माथे पर बल

पड़ गए। उसके मुँह से निकला :

'काश ! तुम जानती दुःख किसे कहते है।..... तुम्हारा यह रसीला दुःख तुम्हे न मिले तो जिन्दगी दूभर हो जाए।'

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

आपका जन्म सन् १९१० में जालन्धर में हुआ था। बी० ए० करने के उपरान्त आपने अध्यापन-कार्य के साथ उर्दू में साहित्य-सृजन प्रारम्भ किया। साहित्य-सृजन की ओर आपकी स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। जालन्धर से लाहौर जाकर आपने अनेक उर्दू-पत्रों में काम किया और अनेक कहानियाँ लिखीं। यहीं इन्होंने हिन्दी को अपने भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। आजकल आप प्रयाग में रहकर स्वतन्त्र रूप से साहित्य-साधना में लीन हैं।

आपने कविता, नाटक, उपन्यास और कहानी—सभी क्षेत्रों में काम किया है।

आपकी भाषा सरस, ललित और कवित्वमयी है। आपकी शैली में विशदता और स्वच्छता पाई जाती है। भाषा में एक तीव्र प्रवाह रहता है जो पाठकों को सतर्क एवं आकृष्ट बनाये रखता है।

आपकी रचनाओं में अनुभूति की मार्मिकता के साथ व्यंग्य का तीव्र दंश छिपा रहता है। कोरी कल्पना के आधार पर आप कथानक की अवतारणा नहीं करते। कहानी के लिए जगत् और जीवन के उन प्रकृत चित्रों को आप ग्रहण करते हैं जो रोजमर्रा हमारे सामने आते-जाते रहते हैं। जीवन के प्रति जैसी सजग दृष्टि 'अश्क' के कथा-साहित्य में उपलब्ध होती है, वैसी बहुत कम लेखक रखते हैं।

२५ डाची

काट[१] पी-सिकन्दर के मुसलमान जाट बाकर को अपने माल की ओर लालसा-भरी निगाहों से ताकते देखकर चौधरी नन्दू वृक्ष की छाँह में बैठे-बैठे अपनी ऊँची घरघराती आवाज में ललकार उठा—"रे-रे अठै के करे है ?"[२] और उसकी छः फुट लम्बी सुगठित देह, जो वृक्ष के तने के साथ आराम कर रही थी, तन गई और बटन टूटे होने के कारण मोटी खादी के कुर्ते से उसका विशाल वक्ष-स्थल और उसकी बलिष्ठ भुजाएँ दृष्टिगोचर हो उठीं।

बाकर तनिक समीप आ गया। गर्द से भरी हुई छोटी नुकीली दाढ़ी और शरई मूछों के ऊपर गढ़ों में धँसी हुई दो आँखों में निमिष-मात्र के लिए चमक पैदा हुई और जरा मुस्कराकर उसने कहा—'डाची[३] देख रहा था चौधरी, कैसी खूबसूरत और जवान है, देखकर भूख मिटती है।"

अपने माल की प्रशंसा सुनकर चौधरी का तनाव कुछ कम हुआ, खुश होकर बोला बोना—"किसी साँड[४] !"

"वह—पहली तरफ से चौथी।"—बाकर ने इशारा करते हुए कहा।

ओंकाट[५] के एक घने पेड़ की छाया में आठ-दस ऊँट बँधे थे, उन्हीं में वह जवान साँडनी अपनी लम्बी सुडौल और सुन्दर गर्दन बढ़ाये घने पत्तों में मुह मार रही थी। माल-मंडी में, दूर जहाँ तक नजर जाती

१. काट=गाँव। २. अरे तू यहाँ क्या कर रहा है। ३. डाची=साँडनी। ४. कौन-सी डाची। ५. एक वृक्ष विशेष।

थी, बड़े-बड़े ऊँचे ऊँटों, सुन्दर साँडनियों, काली-मोटी बेडौल भैंसो, सुन्दर नागौरी सींगो वाले बैलों के सिवा कुछ न दिखायी देता था। गधे भी थे, पर न होने के बराबर। अधिकांश तो ऊँट ही थे। बहावल नगर के मरुस्थल मे होने वाली माल-मडी मे उनका आधिक्य है भी स्वाभाविक, ऊँट रेगिस्तान का जहाज है। इस रेतीले इलाके मे आमद-रफ्त, खेती-बाड़ी, बारबरदारी का काम उसी से होता है। पुराने समय मे जब गाये दस-दस और बैल पन्द्रह-पन्द्रह रुपये मे मिल जाते थे, तब भी अच्छा ऊँट पचास से कम मे हाथ न आता था। अब भी जब इस इलाके मे नहर आ गई है और पानी की इतनी किल्लत नही रही, ऊँट का महत्व कम नही हुआ, बल्कि बढ़ा ही है। सवारी के ऊँट दो-दो सौ से तीन-तीन सौ तक पाये जाते है और वाही तथा बारबरदारी के भी अस्सी-सौ से कम मे हाथ नही आते।

तनिक और आगे बढ़कर बाकर ने कहा—"सच कहता हूँ चौधरी, इस जैसी सुन्दर साँडनी मुझे सारी मडी मे दिखायी नही दी।"

हर्ष से नन्दू का सीना दुगुना हो गया। बोला—"आ एक ही के, ह सो सगली फूटरी है। हूं तो इन्हें चारा फलूंसी नीरिया करूँ।[1]"

धीरे से बाकर ने पूछा—"बेचोगे इसे ?"

नन्दू ने कहा—"बेचने लई तो मडी मां आऊं हूँ।"

"तो बताओ कितने को दोगे ?" बाकर ने पूछा।

नन्दू ने नख से शिख तक बाकर पर एक दृष्टि डाली और हँसते हुए बोला—"तन्ने चाही जे का तेरे धनी बेई मोल लेसी[2] ?"

"मुझे चाहिए"—बाकर ने दृढ़ता से कहा।

नन्दू ने उपेक्षा से सिर हिलाया। इस मजदूर की यह बिसात कि ऐसी सुन्दर सांडनी मोल ले, बोला—"तू कि लेसी ?[3]"

---

१. यह एक ही क्या, यह तो सब ही सुन्दर है, मै इन्हें चारा और फलूसी (ज्वार और मोठ) देता हूं। २. तुझे चाहिए, या तू अपने मालिक के लिए मोल ले रहा है। ३. तू क्या लेगा।

बाक़र की जेब में पड़े डेढ़ सौ के नोट जैसे बाहर उछल पड़ने को व्यग्र हो उठे, तनिक जोश के साथ उसने कहा—"तुम्हें इससे क्या, कोई, ले, तुम्हें अपनी कीमत से गरज है, तुम मोल बताओ !"

नन्दू ने उसके जीर्ण-शीर्ण कपड़ों, घुटनों से उठे हुए तहमद और जैसे नूह के वक्त से भी पुराने जूते को देखते हुए टालने की गरज से कहा—"जा-जा, तू इशी-वशी ले आई, इगो मोल तो आठ बीसी सूँ घाट नाही।[1]"

एक निमिष के लिए बाकर के थके हुए, व्यथित चेहरे पर आह्लाद की रेखा-सी झलक उठी। उसे डर था कि चौधरी कहीं ऐसा मूल्य न बता दे, जो उसके बिसात से बाहर हो, पर जब अपनी जबान से उसने १६०) बताए, तो उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। १५०) तो उसके पास थे ही। यदि इतने पर भी चौधरी नहीं माना तो दस रुपये वह उधार कर लेगा। भाव-ताव तो उसे करना आता न था, झट से उसने डेढ़ सौ के नोट निकाले और नन्दू के आगे फेंक दिए, बोला—"गिन लो, इनसे अधिक मेरे पास नहीं अब आगे तुम्हारी मर्जी !"

नन्दू ने अन्यमनस्कता से नोट गिनने आरम्भ कर दिए पर गिनती खत्म करते ही उसकी आँखें चमक उठीं। उसने तो बाकर को टालने के लिए ही मूल्य १६० बता दिया था, नहीं तो मंडी में अच्छी से अच्छी डाची भी डेढ़ सौ में मिल जाती और इसके तो १४०) पाने की भी उसने स्वप्न तक में कल्पना न की थी। पर शीघ्र ही मन के भावों को मन ही में छिपाकर और जैसे बाकर पर अहसान का बोझ लादते हुए, नन्दू बोला—"साँड़ तो मेरी दो सै की है, पण जा सारी मोल मियाँ तन्नै दस छाड़ियाँ[2]।" और यह कहते-कहते उठकर उसने साँडनी की रस्सी बाकर के हाथ में दे दी।

---

१. जा-जा तू कोई वैसी साँड खरीद ले, इसका मूल्य तो १६०) से कम नहीं।
२. साँडनी तो मेरी २००) की है; पर जा सारी कीमत में से तुम्हें दस रुपये छोड़ दिये।

क्षण-भर के लिए उस कठोर व्यक्ति का जी भर आया। यह साँडनी उसके यहाँ ही पैदा हुई और पली थी, आज पाल-पोसकर उसे दूसरे के हाथ में सौंपते हुए उसके मन की कुछ ऐसी हालत हुई, जो लड़की को ससुराल भेजते समय पिता की होती है। जरा काँपती आवाज में, स्वर को तनिक नर्म करते हुए, उसने कहा— "आ साँड सोरी रहेडी है, तू इह रिड़ स मे ई न रोर देई'।" ऐसे ही जैसे श्वसुर दामाद से कह रहा है—मेरी लड़की लाडो पली है, देखना, इसे कष्ट न होने देना।

आह्लाद के परों पर उड़ते हुए बाकर ने कहा—तुम जरा भी चिन्ता न करो, जान देकर पालूँगा।

नन्दू ने नोट अंटी में सँभालते हुए जैसे सूखे हुए गले को जरा तर करने के लिए घड़े में से मिट्टी का प्याला भरा—मण्डी में चारों ओर धूल उड़ रही थी। शहरों की माल-मण्डियों में भी—जहाँ बीसियों अस्थायी नलके लग जाते हैं और सारा-सारा दिन छिड़काव होता रहता है—धूल की कमी नहीं होती फिर इस रेगिस्तान की मण्डी पर तो धूल का ही साम्राज्य था। गन्ने वाले की गंडेरियों पर, हलवाई के हलवे और जलेबियों पर और खोंचेवाले के दही-पकौड़ी पर, सब जगह धूल का पूर्णाधिकार था। यहाँ वह सर्वव्यापक थी, सर्वशक्तिमान् थी। घड़े का पानी टाँचियों द्वारा नहर से लाया गया था, पर यहाँ आते-आते कीचड़ हो गया था। नन्दू का खयाल था कि निथरने पर पीयेगा, पर गला कुछ सूख रहा था। एक ही घूँट में प्याले को खत्म करके नन्दू ने बाकर से भी पानी पीने के लिए कहा। बाकर आया तो उसे गजब की प्यास लगी हुई थी, पर अब उसे पानी पीने की फुर्सत कहाँ! वह रात होने से पहले-पहले गाँव पहुँचना चाहता था। डाची की रस्सी पकड़े हुए वह धूल को जैसे चीरता हुआ चल पड़ा।

* *

बाकर के दिल में बड़ी देर से एक सुन्दर और युवा डाची खरीदने

---

१. साँडनी अच्छी तरह रखी गई है, तू इसे यों ही मिट्टी में न रोल देना।

की लालसा थी। जाति से वह कमीन था। उसके पूर्वज कुम्हारों का काम करते थे, किन्तु उसके पिता ने अपना पैतृक काम छोड़कर मजदूरी करना ही शुरू कर दिया था, और इसके बाद बाकर भी इसी से अपना और अपने छोटे-से कुटुम्ब का पेट पालता था। वह काम अधिक करता हो यह बात न थी, काम से उसने सदैव जी चुराया था, और चुराता भी क्यों न, जब कि उसकी पत्नी उससे दुगुना काम करके उसके भार को बटाने और उसे आराम पहुंचाने के लिए मौजूद थी। कुटुम्ब बड़ा नहीं था—एक वह, एक उसकी पत्नी और एक नन्ही-सी बच्ची, फिर किसलिए वह जी हलकान करता? पर क्रूर और बेपीर विधाता—उसने उसे उस विस्मृति से, सुख की उस नींद से जगाकर अपना उत्तरदायित्व महसूस करने पर बाधित कर दिया, उसे बता दिया कि जीवन में सुख ही नहीं, आराम ही नहीं, दुख भी है, परिश्रम भी है।

पाँच वर्ष हुए, उसकी वही आराम देने वाली प्यारी पत्नी सुन्दर गुड़िया-सी लड़की को छोड़कर परलोक सिधार गई थी। मरते समय अपनी सारी करुणा को अपनी फीकी और श्रीहीन आँखों में बटोरकर उसने बाकर से कहा था—"मेरी रजिया अब तुम्हारे हवाले है, इसे कष्ट न होने देना!"—और इसी एक वाक्य ने बाकर के समस्त जीवन के रुख को पलट दिया था। उसकी मृत्यु के बाद ही वह अपनी विधवा बहन को उसके गाँव से ले आया था और अपने आलस्य तथा प्रमाद को छोड़कर अपनी मृत पत्नी की अन्तिम अभिलाषा को पूरा करने में संलग्न हो गया था। यह संभव भी कैसे था कि अपनी पत्नी को—जिसे वह दिलोजान से प्यार करता था, जिसके निधन का गम इसके हृदय के अज्ञात पर्दों तक छा गया था, जिसके बाद उम्र होने पर भी, धर्म की आज्ञा होने पर भी, लोगों के विवश करने पर भी उसने दूसरा विवाह न किया था—अपनी उसी प्यारी पत्नी की अन्तिम अभिलाषा की अवहेलना करता!

वह दिन-रात काम करता था, ताकि अपनी मृत पत्नी की उस धरोहर को, अपनी उस नन्हीं-सी गुड़िया को भाँति-भाँति की चीजें ला

कर प्रसन्न रख सके। जब भी कभी वह मण्डी को आता, तो नन्ही-सी रजिया उसकी टाँगों से लिपट जाती और अपनी बड़ी-बड़ी आँखे उसके गर्द मे अटे हुए चेहरे पर जमाकर पूछती —"अब्बा, मेरे लिए क्या लाये हो ?" तो वह उसे अपनी गोद मे ले लेता और कभी मिठाई और कभी खिलौनों से उसकी झोली भर देता। तब रजिया उसकी गोद से उतर जाती और अपनी सहेलियों को अपने खिलौने या मिठाई दिखाने के लिए भाग जाती। यही गुड़िया जब आठ वर्ष की हुई तो एक दिन मचलकर अपने अब्बा से कहने लगी—'अब्बा, हम तो डाची लेंगे, अब्बा हमे डाची ले दो।' भोली-भाली निरीह बालिका ! उसे क्या मालूम कि वह एक विपन्न गरीब मजदूर की बेटी है, जिसके लिए डाची खरीदना तो दूर रहा, डाची की कल्पना करना भी गुनाह है। रूखी हँसी हँसकर बाकर ने उसे अपनी गोद मे ले लिया और बोला—"रज्जो, तू तो खुद डाची है।" पर रजिया न मानी। उस दिन मशीर माल अपनी साडनी पर चढ़कर अपनी छोटी लड़की को अपने आगे बिठाये दो-चार मजदूर लेने के लिए स्वभूमि-स्थित उस कोट में आये थे। तभी रजिया के नन्हे-से मन मे डाची पर सवार होने की प्रबल आकांक्षा पैदा हो उठी थी, और उसी दिन से बाकर का रहा-सहा प्रमाद भी दूर हो गया था।

उसने रजिया को टाल तो दिया था, पर मन ही मन उसने प्रतिज्ञा कर ली थी कि वह अवश्य रजिया के लिए एक सुन्दर-सी डाची मोल लेगा। उसी इलाके मे जहाँ उसकी आय की औसत साल भर मे तीन आने रोज़ाना भी न होती थी ; अब आठ-दस आने हो गई. दूर-दूर के गाँवों में अब वह मजदूरी करता। कटाई के दिनों मे दिन रात काम करता, फ़सल काटता, दाने निकालता खलियानों मे अनाज भरता, नीरा डालकर भूसे के कुप बनाता, बिजाई के दिनो मे हल चलाता, पेलियाँ बनाता, बीज फेंकता। इन दिनों मे उसे पांच आने से लेकर आठ आने रोज़ाना तक मजदूरी मिल जाती, जब कोई काम न होता तो प्रातः उठकर आठ-आठ कोस की मंजिल मारकर मंडी जा पहुंचता और आठ-

दस आने की मजूरी करके ही वापस लौटता। इन दिनों मे वह रोज़ छः आने बचाता रहता था, इस नियम में उसने किसी प्रकार की ढील न होने दी था, उसे जैसे उन्माद-सा हो गया था, बहन कहती—"बाक़र, अब तो तुम बिल्कुल ही बदल गए हो, पहले तो तुमने कभी ऐसी जी तोड़ कर मेहनत न की थी।"

बाकर हँसता और कहता—"तुम चाहती हो मैं आयु भर निठल्ला बैठा रहूँ!"

बहन कहती—"निठल्ला बैठने को तो मै नही कहती, पर सेहत गँवाकर धन इकट्ठा करने की सलाह मै नही दे सकती।"

ऐसे अवसर पर सदैव बाकर के सामने उसकी मृत पत्नी का चित्र खिंच जाता, उसकी अन्तिम अभिलाषा उसके कानों मे गूँज जाती। वह आँगन मे खेलती हुई रजिया पर एक स्नेहभरी दृष्टि डालता और वि_ _द मे मुस्करा कर फिर अपने काम मे लग जाता; और आज—आज डेढ़ वर्ष की कड़ी मशक्कत के बाद, वह अपनी चिरसंचित अभिलाषा को पूरी कर सका था।

उसके एक हाथ मे साँडनी की रस्सी थी और नहर के किनारे-किनारे वह चला जा रहा था।

शाम का वक्त था, पश्चिम की ओर डूबते सूरज की किरणे धरती को सोने का अन्तिम दान कर रही थी। वायु में ठडक आ गई थी और कहीं दूर खेतों मे टिटीहरी 'टिहूँ-टिहूँ' कर रही थी, बाकर के मन मे अतीत की सब बातें एक-एक करके आ रही थी। इधर-उधर कभी कोई किसान अपने ऊँट पर सवार जैसे फुदकता हुआ निकल जाता था और कभी-कभी खेत मे से वापस आने वाले किसानों के लड़के छकडे मे रखे हुए घास-पट्ठे के गट्ठों पर बैठे बैलों को पुचकारते, किसी गीत का एक-आध बन्द गाते, या छकड़े के पीछे बधे हुए चुपचाप चले आने वाले ऊटो की थूथनियों से खेलते चले आते थे।

बाक़र ने जैसे स्वप्न से जागते हुए पश्चिम की ओर अस्त होते हुए

ज़बान पर ताला डाले ! कैसे इसका दम घोंटकर खुद मर जाए ! यही सब सोच-सोचकर उसकी भावुकता सिर धुनने लगती और वह हाथ का काम छोड़कर किसी निराले कोने की खोज में बावली-सी भटकने लगती, जहाँ कि वह दो बूंद आँसू गिराकर मन का भार हलका कर सके।

उसने ससुराल मे रहना पसन्द किया था। पर रहती किसके पास ? देवर-जेठों ने उसके पति के बीमे के जो दस-पाँच हज़ार रुपये मिलने थे, उसके बंटवारे के लिए ही मुकदमेबाजी शुरू कर दी थी और इसीलिए बीमा कम्पनीवालों ने निर्णय होने तक रुपया देने से इन्कार कर दिया था, यद्यपि रुपये का असली वारिस यह सात वर्ष का नीलम ही था। इसी कारण उमा को दिन मे ही आसमान के तारे दीखने लगे थे। आखिर उसका भी तो यही सब परिणाम हुआ था। पिता की अतुल धनराशी मे से अकेली सन्तान होने पर भी वह दूध मे गिरी मक्खी के समान निकालकर बाहर फेक दी गई थी। केवल सम्मिलित परिवार की दुहाई होने पर ही तो यह चचेरा भाई सब हथिया बैठा, और आज इसीके आश्रय मे दो टुकडों के लिए उसे बाध्य होकर आना पडा।

उसे कहीं नौकरी करने मे भी सकोच था। क्या कहकर वह परिचय देती अपना ? तिसपर उम्र छोटी और रूप की पराकाष्ठा नहीं। भाग्य से बड़े घर मे जन्म लिया था और भाग्य ही उसे साधारण स्थिति मे ले आया। पर आज वह भी नही रहा। पति के सुख से वह सब कुछ भूल गई थी, किन्तु आज वे सारे घाव हरे हो आए, जिन्हें उघाड़ने मे भी उसे लाज लगती थी और दबाने मे भी अपार कष्ट।

और सहसा जैसा अपने-आप से दूर भागने की चेष्टा मे नीलम के मुँह पर जोर का तमाचा लगाकर उसे धमकाते हुए कहा, "चल, किताब लेकर आ और जो सबक कल बताया था, उसे सुना···!" फिर मन ही मन कुढ़कर उसने उसे गाली दी, "मर जाता, तो पाप कटता! उन्हीके साथ इसे भी चिता पर धर आती, तो पिण्ड छूटता!" और साथ ही उसकी बड़ी-बड़ी सुन्दर आखो में आँसू ढलकने लगे। जल्दी से मुंह पोछ-

कर उमा साग छौंकने बैठ गई, पीछे बैठी मिसरानी आटा गूधते-गूधते बोली, "ऐसी मत दुतकारो, बीबी ! सिर बदले का है। जी गया तो फिर वे ही दिन आ जाएगे ''बच्चा है। बच्चों को देखकर दो फूल बगीचे से तोड़ लाया तो क्या घट गया ?...... फिर ये बड़े आदमी है, कोई क्या कहे। बड़े आदमियों के बच्चे ऐसे होते ही है। तुरन्त शिकायत करने भी तो आ गए...।" रसोईदारिन की सहानुभूति मे उमा को तनिक भी आश्वासन मिला हो, ऐसा नहीं हुआ ! बल्कि उसका हृदय और बिध-सा गया। 'बड़े आदमी !......बडे आदमियो के बच्चे, और यह मिसरानी, और वह......और नीलम......ओह !' और वह तुरन्त चूल्हे पर से उठकर ऊपर छत पर चली गई, जहा धूप मे बैठा नीलम पिछले दिन का सबक याद करने की चेष्टा कर रहा था।

२

"सेठ कन्हैयालाल जब मरे, तो अशरफी बीबी की उम्र बहुत होगी, तो तीस साल होगी, पर उन्होने उसी दिन से किनारीदार धोती पहननी छोड़ दी और साल-भर तक एक वक्त खाया—और वह भी अलूना... हा !" कहते-कहते उमा की बाल-विधवा भाभी ने, जिसकी उम्र चालीस को पार कर गई थी, दो लीची छीलकर मुह मे डाल ली। उमा ने सिलाई हाथ मे रोककर एक बार इस भावज को सिर से पैर तक देखा और दूसरी बार देखा उसी चौड़े पाडवाली हरे रग की किनारीदार चिट्टी धोती और आसमानी रग के छीट के ब्लाउज़ को। पल-भर मे उसने अपने उन बडे जमींदार विधुर भैया की बात भी सोच डाली, जिन्होंने इन्हे समस्त अधिकार दे रखा है कि चाहे जिसको कुछ भी कह डाले। फिर उसने निश्चय किया—कल सब धोतियो की किनारी फाडकर चारों ओर मशीन घुमा डालेगी वह। उस दिन शाम को उसने खाना नहीं खाया और न किसीने इसका कारण ही उससे पूछा।

अगले दिन से नीलम का स्कूल भी सुबह का हो गया। उमा ने बहुत सवेरे ही उठकर नित्य की भांति सब बच्चों को नाश्ता और दूध

देकर थोड़ा-सा दूध नीलम के सामने भी रख दिया। सोचा—छोटा बच्चा है, बारह बजे तक भूखा कैसे रहेगा ? नीलम अपना बस्ता ठीक करने चला गया। चौकी पर दूध रखा था। उसी चौकी पर आगन मे बैठे अन्य बच्चे भी खा-पी रहे थे, किन्तु दुर्भाग्य से एक कौआ आया और अभागे नीलम का दूध एक ही चोच मारकर लुढका गया। बच्चो ने शोर मचाया। गृहिणी ने भौहे तरेरकर कहा, "और क्या, पीने को भी चाहिए, बिखेरने को भी ! किस घर से आएगा ऐसा ? भैस, गाय घर मे पाल रखी है, तो क्या इसलिए कि पानी की तरह दूध बहाया जाए ?"

उमा और नीलम स्तब्ध और अपराधी के समान ठगे-से खडे के खडे ही रह गए। न मा को दुबारा दूध देने की हिम्मत हुई और न बालक को मागने की ही। उसने केवल इतना ही कहा, 'मै दूध नही पिऊंगा अम्मा।' और बगल मे बस्ता दबाकर बाहर चला गया।

उस दिन रात-भर पानी बरसता रहा और सुबह भी नही थमा। सब बच्चे स्कूल जाने के लिए तैयार होकर गाडी मे जा बैठे। नीलम भी बस्ता लटकाए पास आकर खडा हो गया। तभी जमीदार बाबू के लडके ने कडककर कहा, 'गाडी मे जगह नही है। जाना है तो पैदल ही जाओ।"

"भीग जाऊगा, भैया !" कहकर नीलम ज्योही गाडी की ओर बढा, वह चल दी। धीरे-धीरे नीलम पानी मे भीगता हुआ ही चला।

दोपहर को जब नीलम स्कूल से लौटा, तो उसे तेज बुखार चढा हुआ था। कपडे, किताबे और कापिया सब पानी मे भीग थे। उमा ने भीगने का कारण पूछा, तो नीलम रो पडा, "अम्मा, अब यहा नही रहेगे। घर चलो, बाबूजी के पास !'

बच्चे की बात से उमा की छाती फूटने लगी। घर ' ' 'घर अब कही नही है। 'बाबजी,' ' ' 'वे भी अब नही लौटेगे। कहा लेकर चलू तुझे ? तू जल्दी से पढ़-लिखकर बड़ा हो जा, बस, तब' ' ' ' ' 'हा, तभी कही घर होगा हमारा।' और सोचते-सोचते भविष्य का चित्र उसकी

आंखों के सामने बनने लगा—नीलम, उसकी बहू, उसके बच्चे और नौकर-चाकर, गाय-भैंस, दूध-दही···और·····और अपना घर । यह सब उसकी कल्पना में चल-चित्रों के समान आने-जाने लगे। इन्होंने आकर मानो उसकी वेदना को सहला दिया। किसी क्षीण-से आशा-तन्तु ने उमा को मानो एक दूसरे ही लोक में पहुंचा दिया। वह इस समय जैसे बाईस वर्ष की युवती नहीं, बल्कि पचास वर्ष की वृद्धा है—भरी-पूरी गृहस्थी की स्वामिनी। और स्नेह के प्रबल प्रवाह मे उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। तभी नीलम ने कहा, "अम्मा जाड़ा लग रहा है।"

सहसा उमा का स्वप्न भग हो गया। प्रकृतिस्थ होकर उसने बालक का सारा बदन तोलिये से पोंछ डाला और कपड़े बदलकर बिस्तर पर लिटा दिया। स्वय भी पट्टी पर माथा टेककर बैठ गई, किन्तु पल-भर मे ही वह सचेत होकर उठ खड़ी हुई, ज़मींदार भैया की खडाऊ का शब्द मुनकर। थालियां तो उसे लगानी थी, अभी चटनी भी नही पिसी थी, न रायता ही बना सकी थी वह। उसका हृदय भय और सकोच के भार से बैठा-सा जा रहा था। नीलम ने कहा, "अम्मा, मुझे छाता मंगा देना, मैं उनकी गाड़ी में नहीं बैठूंगा।" और वह 'अच्छा' कहती हुई रसोई-घर की ओर चली गई।

३

उमा ने अपनी चांदी की सुरमेदानी और शीशा बड़े दीवानजी को थमाते हुए कहा, "किसीको पता न हो, मुन्शीजी, इसे बेचकर एक छोटा-सा छाता, एक जोड़ी जूता और दो-चार कमीज़-पाजामो का कपड़ा लाकर इस कमरे मे डाल देना, मै उठा लूगी।"

मुन्शीजी ने दोनों चीजो को हाथ मे तौलते हुए कहा, "देखो, कितने का माल निकले।"

उमा ने मन ही मन हिसाब लगाया—पूरे बीस तोले की यह चीजें उसकी मां ने शादी मे देने के लिए खरीदी थीं। कम से कम बीस रुपये तो मिलेंगे ही। चांदी का भाव तो बहुत तेज़ है, सुनते है। फिर मुन्शी

से कहा, "छाता कितने तक मे आ जाएगा मुन्शीजी ? जूता न सही, चप्पल ही ला देना।"

मुन्शीजी ने गम्भीर मुद्रा से उत्तर दिया, "इस समय सभी चीजे चौगुने दामो मे मिल रही है बीबी ! मुझे क्या इसमे से कुछ खाना थोड़े ही है।"

और तब उमा बिना कुछ कहे घर लौट आई—ठीक पाले की मारी लता के समान। उसे देखते ही भावज ने व्यंग्य कसते हुए कहा, "बाहर क्या करने गई थी ?"

"नीलम के लिए छाता मगाना था और उसका जूता भी टूट गया है बिलकुल।" कहकर उमा साग काटने बैठ गई।

"हूं" कहकर हरनन्दी ने एक तीव्र दृष्टि ननद पर डाली, उसे असीम सन्तोष नही हुआ था। वह बातो का सिलसिला इतने सक्षेप मे समाप्त कर देने की आदी नही थी। बोली, "वे कहते थे कि नीलम अब सयाना हो गया है। अन्दर जनानखाने मे सोने की क्या जरूरत है, बाहर सोना चाहिए, और बच्चे भी तो बाहर सोते ही है।"

उमा जैसे आकाश से गिर पड़ी, नीलम तो अभी पूरे सात वर्ष का हुआ है। वह बाहर, बाहर सोएगा। घर के सभी लडको मे छोटा है वह। कभी मुझसे दूर नहीं सोया'।' पर कहती भी क्या चुपचाप सर झुकाए सुनती रही। गृहिणी को ऐसा लगा, मानो उसकी बात की उपेक्षा की गई है। उनकी बात का कोई उत्तर न देने का साहस इस घर मे किसी भी व्यक्ति को नहीं था। आतक का तीव्र बाण छोड़ती हुई वह अपने कमरे मे चली गई। उमा जैसी की जैसी बैठी रही—बिलकुल निश्चल भाव से वह भाजी काटने मे व्यस्त थी।

उसी दिन शाम को उसकी व्यथा और आश्चर्य की सीमा न रही, जब उसने देखा कि बाहर का नौकर नीलम का बिस्तर लेने आया है। एक बार साहस करके उमा ने पूछा, "किसने कहा कालीचरन तुमसे नीलम का बिस्तर ले जाने को ?"

उत्तर मिला, "बड़े बाबू ने।"

और उमा हाथ मलकर रह गई। आगे वह क्या करती ? किन्तु उस दिन रात-भर न उसे नींद आई और न नीलम को। सवेरे आकर मां की छाती में मुह छिपाकर वह रो पड़ा, "अम्मां, मेरा तो मन नहीं लगता यहां। अब चलो यहाँ से···।" और उस दिन से उसे इतना तेज बुखार चढ़ा कि सारा दिन बेहोश पड़ा रहा। अगले दिन डाक्टर को दिखलाना तय हुआ। डाक्टर ने बतलाया कि नीलम को टाइफाइड है। उसे सबसे अलग रखना चाहिए। बडी छूत की बीमारी है यह।

घटे और दिन, दिन और सप्ताह होते-होते पूरे दो मास बीत गए, पर नीलम का ज्वर कम नही हुआ, कभी कुछ कम होता भी, तो दूसरे क्षण चौगना बढ जाता। वह अब हड्डियो का ढाचा-मात्र रह गया था। आँखे गढे मे धस गई और हाथ-पैर सूखकर काटा हो गए। न कभी कुछ कहता है न सुनता है। बोलता है, तो अट-सट बकता है। सब देखते है, और एक-दूसरे की ओर भयानक सकेत करके चले जाते है। डाक्टर आते है और उमा की ओर एक ठंडी सांस फेंककर चले जाते है। वह अधमरी-सी पाषाण-प्रतिमा के समान बैठी रहती है, न जाने क्या सोचती रहती है! न खाना खाती है न पीती है—मानो दया और करुणा की साक्षात् मूर्ति ही है वह।

४

"नीलू······अरे बोल भैया! दो महीने से ज्यादा हो गए तेरी बोली सुने···नीलम, एक बार आँखें तो खोल मुन्ना! तू कहाँ जाने की तैयारी कर रहा है, बेटा? अकेले मत जाना, नीलू! मन नहीं लगेगा, न तेरा और न मेरा!" कहते-कहते उमा ने पलग की पट्टी पर अपना सिर दे मारा। उसकी आँखों के आगे अंधेरा-सा छा गया। आँसू भी न जाने कैसे सूख गए, नही तो रोकर ही मन कुछ हलका हो जाता।

ठीक दोपहरी का समय था। माँ के हृदय मे भट्टी-सी जल रही थी। वह न जाने कब से प्रलाप कर रही थी। तभी धीरे-धीरे उसके कमरे में

गृहस्वामी ने प्रवेश किया। उमा की एक-एक बात उनके कलेजे को आज अचानक ही काटे डाल रही थी। उन्हे ऐसा लगा, मानो इसका कोई प्रायश्चित्त ही नही है—जैसे वे ही इस अभागी युवती की बरबादी का कारण है। उन्होने आज उसे पथ की भिखारिन बना डाला है। उसकी कुन्दन-सी काया मिट्टी मे मिल रही है। उन्हे याद आया वह दिन जब उसे सजा-सवारकर डोले मे बिठाकर उन्होने भाई का हक पूरा किया था। कितने लाड-प्यार से पाला था उमा को उसके मा-बाप ने! जमींदार बाबू को ऐसा लगा, मानो उमा के माता-पिता प्रेत बनकर उन्हे घूर रहे है। उनका दिल बैठने लगा। तभी उमा ने धीरे-धीरे पट्टी से सिर उठाकर फिर नीलम की ओर देखा।

जगदीश बाबू ने साहस करके दो पग और आगे बढाए और ठीक उमा के पीछे खडे होकर बोले, "तुम मुकदमा जीत गई उमा। अभी तार आया है। रुपया जल्दी ही मिल जाएगा।"

पर उमा को कुछ नही सूझ रहा था। उसने बडी आकुलता से बडे भाई के पैरो पर अपना सिर रखते हुए कहा, "नीलम को बचा लो भैया! यह मुझे छोडकर चुपचाप चला जा रहा है। अब तो आँख भी नही खोलता। इसके प्राण स्वतन्त्र होना चाहते है भैया! यह अब बन्धन पसन्द नही करता। मुझे कोई ऐसा कोना ढूढ दो, जिसे नीलम अपना घर समझ सके, जहाँ इसका अपमान न हो, जहा इसे मुझसे कोई अलग न कर सके और यदि मरना ही है तो यह शांति से तो मर सके!"

कहते-कहते उमा की आँखो से अविरल अश्रुधारा बह चली। उसे ऐसा लगा मानो युगो के बाद आज उसे थोडा सहारा मिला है। आज उसकी कोई सुन रहा है। आज उसके बन्धन ढीले पड रहे है। आज उसके मुख से दो शब्द निकल सके है। जगदीश बाबू ने उमा को उठाते हुए कहा, "बस करो उमा। जो तुम चाहोगी वही होगा। नीलू अच्छा हो जाएगा। मै अभी दूसरे डाक्टर को बुलाता हू।"

वे बाहर चले गए। पत्थर अचानक ही करुणा की तीव्र ज्वाला से

पसीज गया। उमा ने आँसू पोछकर नीलम के सिर पर हाथ फेर
फिर दोनों हाथ जोड़कर किसी अज्ञात शक्ति को नमस्कार किया।
ने आँखे मूंदे ही मूंदे अत्यन्त क्षीण स्वर मे कहा, "अ म मां, पा नी

उमा के कानो में जैसे सहसा अमृत बरस पड़ा—जैसे आज अ
का चाँद मुट्ठी में आ गया। उसने चम्मच-भर पानी बालक के
डालते हुए कहा, "जल्दी अच्छे हो जाओ भैया! फिर अपने घर चले